योगविद्या

वर्ष 14 अंक 2
फरवरी 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: बसंत पंचमी 2025

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

धर्म

हृदय का धर्म ही वास्तविक धर्म है। आन्तरिक शुद्धता पहली शर्त है। सत्य, प्रेम और शौच वास्तविक धर्म की आधारशिलाएँ हैं। निम्नतर प्रकृति पर नियंत्रण, मनोजय, सद्गुणों की प्राप्ति, लोक-सेवा, सदिच्छा, भ्रातृत्व एवं मैत्री भावना की भित्ति पर ही धर्म के मूलभूत सिद्धांतों का भवन निर्मित होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 2 फरवरी 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 धर्म जीवन का सत्य है
5 परहित सरिस धर्म नहीं भाई
7 मानव धर्म
14 कर्म संन्यास
16 धर्म के मूलभूत तत्त्व
20 धर्म और धार्मिकता
24 कर्म और धर्म
28 स्वधर्म की महिमा
31 मेरा धर्म
32 सनातन धर्म और युग धर्म
39 कल्पतरु की छाँव में
43 दांति – मानसिक निग्रह की प्रक्रिया

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

धर्म जीवन का सत्य है

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

धर्म मात्र विश्वास नहीं, रोग नहीं, अफीम का नशा नहीं, धर्म तो जीवन का सत्य और सार है। धर्म भ्रातृत्व, प्रेम और आत्मानुभव का माध्यम है। धर्म से जीवन पल्लवित होता है। धर्महीन जीवन में सदा असन्तोष, अशान्ति और दुःख-ही-दुःख छाये रहते हैं। धर्म के बिना सदाचार, शिक्षा, अध्यात्म अथवा जीवन के किसी अन्य क्षेत्र की उन्नति नहीं हो सकती। धर्म का मूल्य सिद्धान्तों में उतना नहीं जितना व्यवहार के क्षेत्र में है। यदि धर्म का व्यवहार किया जाय तब उसकी असली कीमत मालूम होती है।

धर्मात्मा व्यक्ति किसी भी हालत में अपने धर्म का त्याग करने को तैयार नहीं होता। यदि धर्म है तो प्रेम है, वेदान्त है, एकता और आनन्द है। यह धर्म किस प्रकार है? दिव्यानुभव धर्म है, एकता, ब्रह्म, अल्लाह, राम, कृष्ण, आदि सब एक हैं। *एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति* – जहाँ भी देखिये धर्म

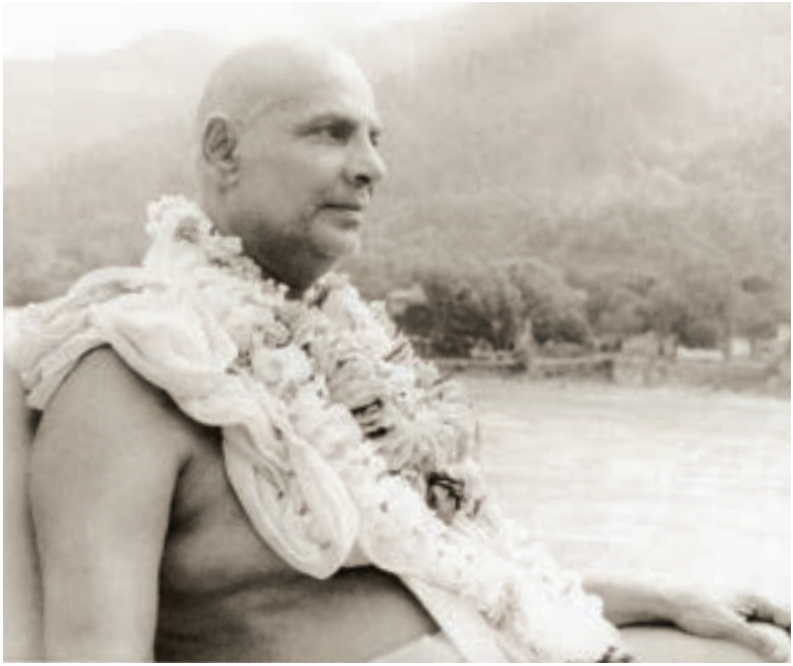

की व्याख्यायें मिलती-जुलती हैं। उनमें विकल्प की सम्भावनायें नहीं। हाँ, कर्मकाण्ड में भेद जरूर है।

सहिष्णुता, उदारता, अनावश्यक व्यवहार का त्याग, सन्त-सेवा, तपस्या, दान, प्रार्थना, तीर्थ – इनको धर्म का प्रथम पाद कहा गया है। केवल बातचीत से काम नहीं चलेगा। व्याख्यान से धर्म का न तो प्रतिपादन किया जा सकता है और न व्यवहार की सिद्धि। धर्म का प्रतिपादन योग द्वारा किया जा सकता है। जप, कीर्तन, सदाचार, निरासक्ति तथा रागद्वेष-हीनता द्वारा वासनाओं को कम किया जा सकता है।

जिन्होंने रजस् का निराकारण कर लिया है, वही धर्म का सच्चा प्रतिपादन कर सकते हैं। उन्हीं को हम धीर पुरुष कहते हैं। नचिकेता, याज्ञवल्क्य जैसे महात्माओं को धर्म का सच्चा प्रतिपादक कहा जा सकता है। कठोपनिषद् में कथा आती है जहाँ पर यमराज ने नचिकेता को धन, स्वर्ग आदि का प्रलोभन देकर भ्रमित करना चाहा था, किन्तु उस युवक नचिकेता के पास विवेक और विचार-शक्ति थी। वह साधन-चतुष्टय से सम्पन्न था। यमराज का प्रलोभन उसे विचलित नहीं कर सका।

जो धर्म का प्रतिपादन करना चाहते हैं उनमें साधन-चतुष्टय, विचार-शक्ति और विवेक-शक्ति होनी चाहिये। हठयोगी योग की क्रियाओं द्वारा, कर्मयोगी निरन्तर निष्काम सेवा द्वारा, भक्त जप-कीर्तन तथा भक्ति के अन्य साधनों द्वारा और ज्ञानी श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा अपने विचारों को पवित्र बना लेता है। विचारों के पवित्र हो जाने पर जीवन में धर्म का अभ्युदय स्वयं हो जाता है।

सच पूछो तो धर्म के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क का कुछ प्रयोजन नहीं। मैं तो यही कहूँगा कि सेवा करो, सबसे प्रेम करो, स्वयं अच्छे बनो और सत्कर्म करो। इनसे ही आप धर्म के सही अर्थ को सिद्ध कर सकोगे और धर्मात्मा बन सकोगे।

वैसे तो बहुत-से साधक त्राटक और ध्यान के अन्य अभ्यास कर अनेकों ज्योतियों का दर्शन करते हैं, पर उनमें भी त्रुटियाँ रहती हैं। ज्योति-दर्शन हो जाने पर भी मन पवित्र नहीं हो पाता, जीवन की वासनाओं का निराकरण नहीं हो पाता और मानवीय व्यवहारों को ईश्वरीय साँचे में नहीं ढाला जा सकता। अतः ध्यान में ज्योति-दर्शन हो जाने पर सन्तुष्ट होकर साधना का अभ्यास न छोड़ो, आगे बढ़ते जाओ। सोचो, विचारो और विश्लेषण करो, अपने मन को

पवित्र बनाओ। अपने कर्मों को संशोधित करो। अपनी भावनाओं को सत्यता की कसौटी पर खरा उतारो।

तुम्हारा असली स्वरूप समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना के रूप में प्रतिष्ठित है। *एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा* – इससे हम जान सकते हैं कि एक ही परमात्मा सभी प्राणियों में व्याप्त है और सबकी अन्तरात्मा है, किन्तु कितने व्यक्ति हैं जिन्होंने इस सिद्धान्त को व्यवहार में बरता है। देखिये चाय की छोटी-सी आदत, उसे ही हम त्याग नहीं सकते। यदि इतनी छोटी-सी चीज को हम अपने से दूर नहीं कर सकते तो और क्या कर सकेंगे? छोटी-छोटी वासनाओं ने हमें खोखला बना रखा है और हम ऊपर-ही-ऊपर बड़ी-बड़ी बातें बनाते फिर रहे हैं तथा धर्म का प्रतिपादन करने पर तुले हुए हैं। यदि धर्म का सच्चा प्रतिपादन करना है तो सात्त्विक बनो, सन्त बनो। यदि तुम्हारे जीवन में सात्त्विकता, सत्यता और सन्तत्व का आविर्भाव हो गया तो फिर धर्म तुम्हारे जीवन को शुद्ध कर देगा।

मैं तो इस सिद्धान्त को मानता हूँ कि गुहायोग से समाज योग कठिन है। संसार में उतरो तो पता चले कि तुम्हारी साधना में कितनी गहराई है। जहाँ पद-पद पर ठोकरें लगती हैं, पद-पद पर काँटे हैं, खाइयाँ हैं, बाधाएँ हैं, नरक है, वहीं हमारी सच्ची परीक्षा हो सकती है। गुहाओं में तो वासनाएँ अन्तर्निहित रहती हैं। समाज में आने पर ही मालूम होता है कि हममें कितना क्रोध, मद और मात्सर्य है। समाज मनुष्य को तौलने वाला तराजू है – आओ परखें तुम्हारा योग।

'अपने पड़ोसी से प्रेम करो' – यह धर्म का प्रथम सिद्धान्त और पाठ है। सड़क पर पड़े भिखारी, प्यासे पथिक और भूखे व्यक्ति के साथ उचित व्यवहार कर अपने धर्म को परखो और उसे खरा उतारो। तोते की तरह जप करने, नाम रटने और अहं ब्रह्मास्मि का पाठ करने से कोई फायदा नहीं, जब तक आत्मा की व्यापकता को सर्वत्र जान तदनुसार व्यवहार नहीं किया गया हो, जब तक मन से वासनाओं को दूर नहीं कर लिया गया हो। जो दूसरों की सेवा करता है, जो प्रत्येक प्राणी से वही व्यवहार करता है जो वह दूसरों से अपने प्रति चाहता है तथा जो दूसरों को मन, कर्म या वचन से कोई कष्ट नहीं पहुँचाता, वही सच्चा वेदान्ती है, वही धर्मात्मा है।

अंत में मैं यही कहूँगा कि सेवा, प्रेम, दान, आत्मशुद्धि, ध्यान और ज्ञान ही धर्म का सार और उसके व्यावहारिक स्वरूप हैं। इस धर्म को आत्मसात् करने में ईश्वर आपको आशीर्वाद दें।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक जीवन में केवल भगवान का भजन करने से, गुरु का नाम लेने से सब कुछ पूरा नहीं होता है। दुनिया में बहुत दुःख है। दुनिया में बहुत गरीब, भूखे और बीमार लोग हैं। वे भी तुम्हारी ही आत्मा हैं। तुमको उनका ख्याल नहीं आता है क्या? जैसे तुम्हारा हाथ है, नाक है, कान है, वैसे ये सब भी तुम्हारे अंग हैं, विराट् पुरुष के अंग हैं सब। गुरु और भगवान का नाम लिया तो यह आधा काम हुआ। बाकी आधा काम दीन-दुखियों के लिए अपने दिल में करुणा और रहम पैदा करना है।

सब्जी बना दी पर नमक नहीं डाला तो सब्जी बेकार है। हलवा बना दिया, चीनी नहीं डाली, वह भी बेकार है। वैसे ही भगवान का नाम ले लिया, गुरु का नाम ले लिया तो स्वार्थ के लिए हुआ। यह सब केवल अपने लिए करते हो। भगवान के नाम से तो परमार्थ होना चाहिए और इसीलिए दुनिया में जितने भी लोग साधना कर रहे हैं किसी की उन्नति नहीं हो रही है। अगर जहर की बोतल को कॉर्क लगाकर सौ साल गंगा जी में डाल देते हो तो क्या

होगा? जहर, जहर ही रहेगा, वह अमृत नहीं होगा। ऐसे हजारों-लाखों लोग हैं जो भजन-पूजन करते हैं, अरदास करते हैं, गुरुद्वारे जाते हैं, मंदिर जाते हैं, पर किसको मुक्ति मिली है? किसी को नहीं, क्योंकि वे आधा काम कर रहे हैं, पूरा नहीं। हलवा बना रहे हैं, चीनी नहीं डाल रहे हैं।

दूसरों के लिए करुणा होना बहुत जरूरी है। जैसा तुमको अपने माँ-बाप या भाई-बहन या बेटा-बेटी के लिए दिल में दर्द होता है, प्रेम होता है, वैसा ही दूसरों के प्रति भी होना चाहिए। उसमें फिर त्याग होना भी जरूरी है। त्याग का मतलब क्या होता है? छोड़ना, लेकिन क्या छोड़ना? किसी के पास रोटी नहीं है और हमारे पास चार रोटियाँ हैं तो चलो, दो उसके लिए छोड़ देते हैं। इसको त्याग कहते हैं। दूसरों के लिए अपने हिस्से का कुछ निकालकर देना त्याग है। ऐसा करोगे तो साधना के सब अवरोध गायब हो जायेंगे, गुरुजी का फोटो अपने आप सामने आ जाएगा। बस दिल में रहम होना चाहिए।

– 28 फरवरी 1998, रिखियापीठ

मानव धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आदिकाल से हमारे पूर्वजों ने कहा है कि भगवान का वास सभी स्थानों में रहता है, सभी जीवों में रहता है, कण-कण में रहता है। हमारे मनीषियों ने इस बात को स्वीकार किया कि ईश्वर सर्वव्यापी है। उपनिषदों में भी यह घोषणा की गयी है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

ईश का आवास यह सारा जगत् है और उनकी छवि हर व्यक्ति के भीतर है, जिसे लोग आत्मा कहते हैं। परमात्मा और आत्मा, ये एक ही तत्त्व के द्योतक हैं। परमात्मा हैं सागर और आत्मा है उस सागर का एक बूंद। जल में तो कोई अंतर नहीं है, बूंद में भी वही तत्त्व है और सागर में भी वही तत्त्व है। इसीलिए हमारे मनीषियों ने कहा कि जीवन में ईश्वर है, जीवन में ईश्वर की अनुभूति होती है। जो इस विचार को मानते हैं, वे आस्तिक कहलाते हैं और जो इस विचार को नहीं मानते, वे नास्तिक कहलाते हैं। यह तो केवल शब्दों का हेर-फेर है, और कुछ नहीं, क्योंकि हमारे पूर्वजों और मनीषियों का ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव रहा है। आपने पढ़ा या सुना होगा, खंभे में भी प्रह्लाद ने ईश्वर को देखा और उस खंभे से नरसिंह रूप प्रकट हुए। इस प्रकार के अनेक उदाहरण और दृष्टांत हैं, जो बतलाते हैं कि जहाँ पर भी तुम उस परम तत्त्व की खोज करोगे, वहाँ उसे पाओगे।

वेदों में यह भी कहा गया – *सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्*। ईश्वर या परमात्मा के हजारों सिर हैं। यहाँ पर हजारों का मतलब एक, दो, तीन, चार के गणित से नहीं है, बल्कि असंख्य है। उसकी असंख्य आँखें हैं, उसके असंख्य पैर हैं। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि हम ईश्वर को एक रूप में नहीं बाँध सकते। आप जो यहाँ बैठे हैं, वे सब ईश्वर के ही अलग-अलग रूप हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

एक बात और बतलाता हूँ। एक परिवार है ईश्वर का। ईश्वर के परिवार में चार बच्चों का जन्म होता है, जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के प्रतीक

माने जाते हैं। इन चार बच्चों में एक बच्चा पढ़ाई करके शिक्षक बनता है, एक बच्चा मिलिट्री एकेडमी में जाकर सैनिक बनता है, एक बच्चा एम.बी.ए. पढ़कर बिज़नेस करता है और एक बच्चा समाज की सेवा करता है। परिवार एक है, पिता एक है, लेकिन चार बच्चों ने अलग-अलग जिम्मेदारियाँ उठायी हैं और उन जिम्मेदारियों को निभाते हैं। ईश्वर की इन चार संतानों को मानवों ने अपनी सीमित बुद्धि के कारण, पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से युक्त होकर नाम दिये। जो शिक्षा से जुड़ा है उसको नाम दिया ब्राह्मण। जो सेना में काम करता है, उसे नाम दिया क्षत्रिय। जो नौकरी और व्यवसाय करता है, उसको कहा वैश्य और जो समाज की सेवा करता है, उसको कहा शूद्र।

सामाजिक भेद-भाव

एक बात समझ में नहीं आती है कि मनुष्य अपने पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों के कारण ईश्वर की इन चार संतानों में भेद क्यों देखता है? ईश्वर से जो भी उत्पन्न होता है, वह तो उसी का अंश माना जाता है। रामचरितमानस में कहा भी गया है – 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'। हमलोग भी तो ईश्वर के ही अंश हैं, चाहे किसी भी क्षेत्र में रहें। पुरुषसूक्त में कहा गया है – *ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्* – ब्राह्मण की उत्पत्ति, शिक्षक की उत्पत्ति मुँह से होती है। मुँह है वाणी का प्रतीक।

बाहू राजन्यः कृतः – भुजाओं से क्षत्रियों की उत्पत्ति होती है जिनका धर्म है रक्षा करना। *ऊरू तदस्य यद्वैश्यः* – जाँघों से व्यवसायियों की उत्पत्ति होती है। अन्त में कहा गया – *पद्भ्यां शूद्रो अजायत* – पैरों से शूद्रों का जन्म होता है।

अब एक बात कहता हूँ, बुरा नहीं मानना और गलत मत सोचना। जब आप भगवान के सामने जाते हो तो उनके सिर को प्रणाम करते हो, भुजाओं को प्रणाम करते हो, जाँघों को प्रणाम करते हो या उनके पैरों को छूते हो? जब पैरों को छूआ जाता है तो उसे आराधना कहते हैं। इस दृष्टांत से हम यह कहना चाह रहे हैं कि जिसको समाज छोटी जात कहता है, वही वास्तव में पूजनीय है। अहंकार के कारण ब्राह्मण लोग कहते हैं कि मैं उत्तम हूँ, श्रेष्ठ हूँ, क्योंकि मुझे ज्ञान है, लेकिन आज के ब्राह्मण वैसे ब्राह्मण नहीं जिनके भीतर विनम्रता हो। आज के ब्राह्मण में विनम्रता के बदले अहंकार होता है, तो क्या वे ईश्वर की वाणी को सत्यापित करते हैं? *विद्या ददाति विनयम्* – जिसके भीतर ज्ञान होता है, उसके भीतर विनम्रता और सरलता भी होती है और वह ऊँच-नीच का भेद नहीं देखता। जो ऊँच-नीच का भेद देखे, उसके जीवन में विद्या नहीं है।

सीयराममय सब जग जानी, करहूँ प्रणाम जोरी जुग पानी – यह अद्वैत दर्शन है। अद्वैत का मतलब होता है ईश्वर की संतानों में सृष्टि-भेद नहीं देखना। जब सभी के भीतर ईश्वर का वास है, तो फिर ऊँच-नीच का भाव और भेद कैसा? हम तुमसे बड़े हैं, तुम हमसे छोटे हो, तुम हमारे नौकर हो, हम तुम्हारे मालिक हैं, यह बात वाणी से निकलती भी कैसे है? जिसको हम क्षत्रिय मानते हैं, जो अपने आपको समाज का रक्षक कहता है, आज क्या वह समाज का रक्षक है अथवा भक्षक? दूसरों को प्रताड़ित करता है तो कैसे हुआ क्षत्रिय? उसका धर्म है रक्षा करना, प्रताड़ित करना नहीं। जो व्यवसायी है, उसका धर्म है पूरे समाज में सुविधा का वितरण करना, चाहे वह अन्न हो, वस्त्र हो या और कुछ भी हो, ताकि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में अभाव का सामना नहीं करे। और जिसको लोग छोटी जात कहते हैं, वह चरण है, समाज-सेवक है। अगर आपका चरण कोई काट दे तो आप खड़े नहीं हो पाओगे। पैर केवल ठूँठा रहेगा, डगमगाओगे, गिरोगे, उठ नहीं पाओगे, चल नहीं पाओगे।

तुम्हारा घर कौन बनाता है? क्या ब्राह्मण बनाता है तुम्हारा घर? क्या क्षत्रिय बनाता है तुम्हारा घर? क्या वैश्य बनाता है तुम्हारा घर? घर कौन बनाता है, औजार कौन बनाता है, अस्त्र-शस्त्र कौन बनाता है, जिनके कारण तुम अपने आपको सुरक्षित रख पाते हो, आराम से रह सकते हो? महल को कौन खड़ा

करता है? तुमने खड़ा किया है क्या, जो अपने आपको बुद्धिजीवी और अमीर कहते हो? तुममें क्या वह कौशल है? तुमको क्या उस कला का ज्ञान है कि तुम ईंटा बना पाओगे? तुम्हें क्या वह ज्ञान है कि तुम एक मकान का निर्माण कर पाओगे? क्या तुममें वह ज्ञान है कि एक शस्त्र को बना सकते हो अपनी और अपने समाज की रक्षा के लिए? नहीं। इसलिए जो समाज-सेवक होते हैं, वे हमेशा श्रेष्ठ और पूज्य होते हैं।

हमारे दादा गुरु, स्वामी शिवानंद जी और हमारे गुरु, स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं कि हमारे देवी-देवता सड़क में झाड़ू लगाते हैं, लोगों की टट्टी साफ करते हैं, तुम्हारे मकान में आकर तुम्हारे कपड़े धोते हैं, तुम्हारे जूठे बर्तन धोते हैं। तुम में तो हैसियत नहीं है कि अपना एक प्याला भी धो सको। हैसियत है अपने कपड़े धोने की? अपना बिस्तर बनाने की? अपना कमरा साफ करने की? नहीं, नौकरों पर ही तो आश्रित रहते हो।

वास्तविक पाद-सेवनम्

इसलिए चरण-सेवा का निर्देश शास्त्रों में दिया गया है। चरण-सेवा का मतलब मंदिरों में जाकर पाषाण मूर्ति के चरणों को धोना नहीं होता। चरण-सेवा का मतलब होता है उनलोगों की सेवा करना, जिनके कारण आज तुम जीवित हो, सुरक्षित हो और आराम से रहते हो, आराम से खाते हो, आराम से पहनते हो, नहीं तो तुम्हारा जीवन हराम है।

संत-महात्माओं और ऋषि-मुनियों ने अपने जीवन में इस दुराग्रह को कभी नहीं आने दिया है। उन्होंने हमेशा कहा है कि सभी का सम्मान और सत्कार करो। मैं जाति की बात नहीं कर रहा हूँ। वह सिद्धान्त तो तुमलोगों ने बनाया है अपनी सुविधा के लिए, अपने अहंकार के पोषण के लिए, लेकिन अगर इसको व्यावहारिक दृष्टि से देखोगे, तो बात समझ में आएगी।

सामने जो बच्चे दिख रहे हैं, मालूम ये कौन हैं? ये समाज-सेवकों के बच्चे हैं। इनको हमने अपनाया है, गोद लिया है। तुम तो एक बच्चे को नहीं संभाल पाते हो, लेकिन ये सब हमारे बच्चे हैं और इनकी देखभाल हम करते हैं, क्योंकि ये ही भविष्य में तुम्हारे लिए एक उत्तम समाज का निर्माण करेंगे, तुम्हारे लिए एक उत्तम घर को बनाने में सक्षम रहेंगे, तुम्हारी सुरक्षा के लिए ये तैयार रहेंगे। तुम यह सब नहीं कर सकते हो, चाहे कितनी ही डिग्रियाँ हासिल कर लो या धन कमाओ। तुम सब दुःख से भागना चाहते हो, पर ये लोग दुःख

का सामना करते हैं। सब संघर्ष से दूर होना चाहते हैं, लेकिन इनका जीवन संघर्ष से घिरा रहता है। कभी खाने को नहीं, कभी पहनने को नहीं, कभी पीने को नहीं, कभी कुछ नहीं और तुमलोग अपने घरों में खाना बनाकर फेंकते हो, लाट साहब बनकर बैठे हो! अगर एक स्वस्थ समाज को चाहते हो, अपने परिवार और अपने समाज के लिए एक सुंदर भविष्य की कल्पना करते हो तो अपने विचारों को बदलना पड़ेगा। यही है ईश्वर की सर्वव्यापकता का बोध। जब तक तुम्हारे भीतर 'सीयराममय सब जग जानी' का भाव नहीं आता, तब तक तुम अपने दुराग्रहों से ऊपर नहीं उठ पाओगे। हमेशा बोलते रहोगे, 'मैं ऊँचा हूँ, तुम नीचे हो' और उसी में तुम्हारे जीवन का और तुम्हारे समाज का भी बँटाधार होता है। यह ईश्वर की वाणी है, हमारे ऋषियों की वाणी है।

जीवन का जो सम्मान करता है, वही वास्तव में आस्तिक होता है, क्योंकि वह हर प्राणी के भीतर उस ईश्वरीय तत्त्व को देखता है। जो जीवन का सम्मान नहीं कर सकता, जो अपने अहंकार में लिप्त होकर दूसरों से जाति पूछता है कि 'तुम कौन हो' और अपनी जाति से सम्बन्ध बनाता है, दूसरी जाति से सम्बन्ध तोड़ता है और कहता है कि हमलोगों का समाज दूषित हो रहा है, वह नास्तिक है। दूषित कौन कर रहा है? तुम कर रहे हो अपनी सोच, व्यवहार और कर्म से। उसको ठीक करो।

इंसानियत एक है, जाति मनुष्य द्वारा निर्मित अहंकार का एक अवशेष है। अगर तुम इंसान और इंसानियत को मानते हो तो सम्मान-सत्कार सबके

लिए बराबर होना है। नहीं तो तुम ही हारोगे अपने जीवन की इस यात्रा में। इतिहास इसका गवाह है। जो इंसानियत को लेकर चला है, वह आगे बढ़ा है और जो जात-पात को लेकर चला है, उसका पतन हुआ है। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे परिवार, समाज, संस्कृति और राष्ट्र का पतन हो? नारा देने से कुछ नहीं होता, अपने आपको पहले सुधारने की आवश्यकता है। इसलिए अपने आपको पहले सुधारो, अपनी भावना, विचारों, कर्मों, आचरण और वाणी को सुधारो, तब जाकर तुम्हारा कल्याण होगा। नहीं तो जिंदगीभर लगाते रहो चक्कर साधु-संन्यासियों का, गिरजाघरों और मंदिरों का, प्रार्थना करते रहो, 'भगवान, मेरी नौका पार कर दो', लेकिन भगवान तुम्हारी सुनेंगे नहीं। भगवान उसी की सुनते हैं, जो उनको सुनता है।

सच्ची भक्ति

क्या तुमने कभी भगवान को सुना है? उनको अपनी बात सुनाते हो, लेकिन उन्होंने जो कहा है, उसका अपने जीवन में कभी पालन करने का प्रयास किया है? रोज रामायण पढ़ते हो, लेकिन रामायण की कौन-सी शिक्षा को आत्मसात् किया है? गीता पढ़ते हो रोज, गीता की कौन-सी शिक्षा को आत्मसात् किया है? श्रीमद्भगवद्गीता का बारहवाँ अध्याय पढ़ा है न, जिसमें भगवान कहते हैं कि कौन मुझे प्रिय है। हर कोई ईश्वर को प्रिय नहीं होता। जो चोर हैं, जो लंपट हैं, जो कपटी हैं, जो छली हैं, जो व्यभिचारी हैं, वे ईश्वर के प्रिय नहीं होते। फिर उनका प्रिय कौन होता है?

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥12.13॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥12.14॥

बारहवाँ अध्याय पढ़ लेना, पूरा लिखा हुआ है कि भगवान को किस प्रकार के व्यक्ति प्रिय होते हैं और जिनका वे उद्धार करते हैं। भगवान कहते हैं – *यो मद्भक्तः स मे प्रियः*, एक बार नहीं, बार-बार कहते हैं कि ऐसा ही भक्त मुझे प्रिय है। इसलिए कभी नहीं कहना कि भगवान सभी को समान चाहते हैं। नहीं, कैसे चाहेंगे? जो दुष्ट हैं, उनसे भगवान की अपेक्षा होती है कि वे अपना मार्ग सुधारें। जो अधर्मी हैं, भगवान की अपेक्षा होती है कि वे धर्म का

आचरण करें। जो पापी हैं, भगवान की अपेक्षा होती है कि वे पुण्य की ओर अग्रसर हों और वे अवसर भी देते हैं अपने आपको परिवर्तित करने का। और जो पहले से ही पुण्यात्मा और धार्मिक है, जो पहले से ही ईश्वर की वाणी के अनुसार आचरण करता है, वह उनका प्रिय होता है।

केवल पूजा करने वाले आस्तिक हैं, बाकी नास्तिक हैं, ऐसा कभी नहीं होता। आस्तिक वह है, जो ईश्वर की सत्ता को हर व्यक्ति में देखता है, हर प्राणी में देखता है, उनका सम्मान और सत्कार करता है। वही वास्तविक आस्तिक है। जो मंदिर में जाकर घंटी बजाता है वह आस्तिक नहीं है, क्योंकि उसके मन में कोई सकारात्मक भाव नहीं होता। वह स्वार्थ से जुड़ा रहता है, केवल अपने लिए सुख की कामना करता है।

इसलिए पूजा हमेशा पैरों की होनी चाहिए और जो चरण की पूजा करता है, उसका भगवान कल्याण करते हैं, उसको मोक्ष देते हैं, उसको सुख देते हैं, उसको शांति देते हैं, उसको अपने सान्निध्य में लेते हैं। जो चरणों की अवहेलना करके केवल भगवान के मुख की ओर एकटक नजर लगाए रहता है, भगवान उससे परेशान हो जाते हैं कि आदमी क्या कर रहा है? मेरे को देखते जा रहा है, कुछ करता ही नहीं, दृष्टिदोष है इस व्यक्ति को! एकटक देखने का मतलब यह नहीं कि मैं भगवान का बहुत बड़ा भक्त हूँ। आँसू बह रहे हैं, इसका अर्थ नहीं कि मैं भक्त हूँ। जीवन की कलुषता तो दूर हुई नहीं और मगरमच्छ के आँसू बहा रहे हो!

इसीलिए आश्रमों में जाति-पाती को नहीं देखा जाता। वैदिक इतिहास पढ़ लो, वैदिक काल में आश्रमों में सबका स्वागत होता था। सत्यकाम जाबालि की कथा पढ़ लो। ऐसे अनेकों दृष्टान्त दे सकता हूँ जहाँ ऋषियों-मनीषियों ने समाज के सभी वर्गों को अपने गले लगाकर उनको उत्तम मार्ग पर चलाने का एक आदर्श स्थापित किया। क्या तुम किसी को अपने आदर्श के रूप में स्थापित कर सकते हो? नहीं कर पाए हो आज तक। इसीलिए साधु-संन्यासियों की आवश्यकता होती है, जो बार-बार इस चीज को याद दिलाएँ – 'विचारों को बदलो, सोच को बदलो, व्यवहार को बदलो, कर्म को बदलो, आचरण को बदलो, वाणी को बदलो और सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करो' मेरे विचार से यही आज की सबसे बड़ी शिक्षा है। सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार होना चाहिए, इस बात को भूलना मत।

– 29 जनवरी 2025, बसंत पंचमी महोत्सव, मुंगेर

कर्म संन्यास

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

प्राचीन ऋषि-मुनियों ने चार प्रकार के पुरुषार्थों की चर्चा की है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म का तात्पर्य सद्गुणों से है, अच्छे कार्यों से है। अर्थ का अभिप्राय वस्तुओं के स्वार्थपूर्ण संग्रह और भोग से है, काम का तात्पर्य मनोकामनाओं और उनकी पूर्ति से है, तथा मोक्ष का तात्पर्य हर प्रकार के द्वन्द्व तथा जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति से है। मोक्ष की अवस्था में मन अन्य तीन के पीछे नहीं भागता।

जीवन में इन चार पुरुषार्थों का स्वस्थ तालमेल होना चाहिए। एक गृहस्थ के जीवन में अर्थ और काम का विशेष स्थान होता है। धर्म और मोक्ष उसके आंतरिक गुण होते हैं जो उसे उच्च जीवन में पहुँचने की प्रेरणा और दिशा प्रदान करते हैं। संन्यासी तथा कर्म संन्यासी के जीवन में धर्म और मोक्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, अर्थ और काम का स्थान गौण होता है। जीवन में इन चारों का इस प्रकार स्वस्थ समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

वेद तो हमेशा यही घोषणा करते आये हैं कि एक जीवन दूसरे उच्चतर जीवन में कूदने का मंच होता है। जैसे ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार होता है, वैसे ही गृहस्थाश्रम वानप्रस्थ का तथा वानप्रस्थ संन्यास आश्रम का प्रवेश द्वार होता है। इसका तात्पर्य यह कतई नहीं होता कि आप घर, परिवार तथा व्यवसाय से छुट्टी ले लें। यह सब आपके मन के विचारों और दर्शन का स्वाभाविक और क्रमिक विकास है।

एक कर्म संन्यासी के लिये गृहस्थ जीवनयापन अपने कर्मों की समाप्ति का स्वर्णिम अवसर होता है। इसलिये वह गृहस्थ जीवन को अपने धर्म तथा कर्त्तव्य के रूप में सहर्ष स्वीकारता है। वह उसकी उपेक्षा अथवा निषेध नहीं करता। जीवन का प्रत्येक अनुभव उसकी उच्च चेतना के विकास का सोपान होता है। वह सामान्य गृहस्थ जीवनयापन करते हुए उसमें होने वाले हर अनुभव का उपयोग अपनी चेतना के विकास के लिये करता है। वह एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जहाँ नये कर्मों का संचय नहीं होता।

कर्म संन्यासी सामान्य व्यक्ति की तरह रहता है, अपने कार्यों को करता है। परन्तु उसमें उच्च चेतना होती है। उसकी दृष्टि से लक्ष्य ओझल नहीं होता।

अपने कर्मों में उसकी निष्ठा होती है, जीवन के प्रति गहरी सूझ-बूझ होती है और धीरे-धीरे वह स्वयं को कर्म के बन्धन तथा कार्य-कारण के नियम से मुक्त कर लेता है। इस बिन्दु पर पहुँचने पर वह चाहे तो त्याग का मार्ग अपना सकता है, अथवा जिस प्रकार चाहे रह सकता है, परन्तु इस स्थिति तक पहुँचने के पूर्व उसे सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन को जीना होगा और उस जीवन के अनुभवों को पूरी तरह ग्रहण करना होगा।

धर्म के मूलभूत तत्त्व

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

स्वमताभिमानता, यानि अपने ही मत या सिद्धान्त को सही ठहराने को धर्म नहीं कहते। किसी मत को भी धर्म नहीं कह सकते। मत तो फूटी बाँसुरी है। केवल शाब्दिक ज्ञान को भी धर्म की संज्ञा नहीं दी जाती। भावना

तथा विश्वास मात्र भी धर्म नहीं है। किसी भयंकर बीमारी की पीड़ा के कारण जो प्रार्थना की जाती है, उसे भी धर्म नहीं मानते। धर्म तो मुख्यतः परोपकार तथा सेवा का मार्ग है। ध्यानमय तथा ईश्वरपूर्ण जीवन को ही धर्म कहते हैं। वही धर्मात्मा कहला सकता है, जो श्रद्धा तथा भक्तियुक्त हो, जो दया-प्रेम से परिपूर्ण व्यवहार करता हो।

धर्म तो अनेक सांसारिक प्रलोभनों के रहते भी परहित तथा सेवा में रत रहने को कहते हैं। ललाट पर तिलक लगाना, लम्बी दाढ़ी रखना, जटाएँ बढ़ाना, काषाय वस्त्र धारण करना, धूप अथवा पानी में खड़े रहना, सिर मुँडवाना तथा घण्टे और घड़ियाल बजाना ही धर्माचरण नहीं कहलाता। ईश्वर में ही निवास करने को धर्म कह सकते हैं, ईश्वर सम्बन्धी वाद-विवाद करने को नहीं। बौद्धिक व्यायाम को धर्म नहीं माना जा सकता। वास्तविक धर्म

तो सभी धर्मों से परे रहता है। अन्तरंग तथा बहिरंग जीवन की एकरूपता ही धर्म है। धर्म तो भगवद्स्वरूपता तथा आत्म-साक्षात्कार-प्राप्ति को कहते हैं।

सावधान रहिए कि व्यक्तिगत पक्षपात, रूढ़िवादिता, कट्टरता तथा साम्प्रदायिकता आपके दृष्टिकोण को संकीर्ण न बना दें। वस्तुतः धर्म सार्वभौमिक, विस्तीर्ण, असीम, अनन्त एवं व्यापक है। अज्ञानी जनों की तथाकथित धार्मिक उपासना-पद्धतियों से दुष्प्रभावित मत होइए। आपमें विवेक तथा बुद्धि की सहायता से धर्म के अनिवार्य अंगों को अनावश्यक रीतियों से पृथक् कर पाने की क्षमता होनी चाहिए, तब कहीं आपको शान्ति मिलेगी। अनिवार्य अंग तो सभी धर्मों के समान हैं ही। उनमें भिन्नता तो अनावश्यक-असंगत बातों के कारण होती है।

धार्मिक जीवन से लाभ

धार्मिक जीवन महानतम वरदान है। ऐसा जीवन मनुष्य को सांसारिक दलदल तथा नास्तिकता से बाहर निकालता है। वह बुद्धि निष्फल है, जो धर्म से प्रेरित एवं प्रकाशित नहीं। धर्म हमें गन्तव्य-स्थान तक ले जाता है, जहाँ तर्क नहीं पहुँच पाता। यदि आपका जीवन धर्मानुसार रहेगा तो आपको ज्ञान, अमरत्व, शाश्वत शान्ति तथा नित्यानन्द की प्राप्ति हो जायेगी। धर्म चिन्ताओं तथा पीड़ाओं से मुक्त करता है। धर्म द्वारा शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती है। धर्म पूर्णता तथा मोक्ष प्रदान करता है। धर्म हमें स्वाधीन बनाता है। धर्म द्वारा ही आत्मा का परमात्मा में विलय हो जाता है। धर्म आवागमन से मुक्ति दिलाता है।

धर्मविहीन मनुष्य मानव कहलाने का अधिकारी ही नहीं। उसका समस्त जीवन व्यर्थ हो जाता है। वह मानव-जीवन के उद्देश्य से भी अनभिज्ञ रहता है। धर्माचरण रहित कोई जीवन ही नहीं। धर्म द्वारा ही मानव-जीवन की सार्थकता सम्भव है। धर्म से ही मन में प्रेम, भक्ति, निर्मलता तथा प्रसन्नता का उदय होता है। कोई भी भौतिक शक्ति धार्मिक अन्त: उत्साह को मिटा नहीं सकती, अल्प समय के लिए भले ही किसी मिथ्या प्रचार के कारण व्यक्ति हतोत्साहित हो जाये।

विश्व के धर्म

विश्व के मुख्य छह धर्म हैं – हिन्दू, पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम तथा बौद्ध धर्म। हिन्दू धर्म का कोई संस्थापक नहीं है, किन्तु शेष सभी धर्मों के संस्थापक

हैं जिनके नाम पर ये मत चलाये गये। सिक्ख धर्म में हिन्दू तथा इस्लाम के सिद्धान्त समन्वित कर लिये गये हैं। जैसे ब्रह्म समाज में ईसाई तथा हिन्दू धर्म का मिश्रण है, इस भाँति अन्य कई धर्म किसी-न-किसी मुख्य धर्म के अंग हैं।

जब कभी भी धर्म में पुरोहितों के स्वार्थ तथा अभिमान के कारण ग्लानि आयी, अथवा अज्ञानवश लोग धार्मिक सिद्धान्तों को भूल बैठे, तभी एक महान् सन्देशवाहक अथवा सन्त का प्राकट्य हुआ। उसने यथार्थ धर्म से मिथ्या आवरण को हटा कर, उसे अपनी मौलिकता, शुद्धता, महिमा एवं भव्यता प्रदान की।

प्राचीन काल में जब वैदिक अद्वैतवाद को लोग भूल बैठे, तब पारसी धर्म आया, जिसमें आहुर मज़दा के रूप में एक ईश्वर की पूजा पर बल दिया गया और देवताओं की पूजा का विरोध किया गया।

जब वैदिक धर्म केवल यज्ञ एवं पशु-बलि तक ही सीमित रह गया, और ब्राह्मणों ने शूद्रों को तिरस्कृत करना आस्म्भ कर दिया, तो दयालु बुद्ध का जन्म हुआ, जिन्होंने अहिंसा का प्रचार तथा शूद्रों का उद्धार किया।

जब यहूदी अहंकारी हो गये तो ईसामसीह का प्रादुर्भाव हुआ, और उन्होंने यहूदी मत का शुद्धिकरण किया। जब ईसाई मत मूर्ति-पूजा तथा अन्धविश्वास तक ही सीमित रह गया तो मुहम्मद ने एक खुदा का प्रचार किया। इस प्रकार प्रत्येक नवीन धर्म ने पूर्व-धर्म में सुधार कर उसकी त्रुटियों का निवारण किया।

सर्व-धर्म-समानता

सभी सन्देशवाहकों को प्रभु ही भेजते हैं। वे महान् योगी तथा भगवद्-साक्षात्कार-प्राप्त महान् आत्माएँ होती हैं, जिनको दिव्य तत्त्व का अन्तर्ज्ञान होता है। उनके शब्द धर्ममय तथा अकाट्य होते हैं। कुरान शरीफ, ज़ेन्द अवेस्ता तथा बाइबिल भी भगवद्गीता की भाँति धार्मिक ग्रन्थ हैं। सभी में दिव्य ज्ञान का सार भरा है। आहुर मज़दा, ईश्वर, अल्लाह उसी एक भगवान् के विभिन्न नाम हैं।

धर्म का मूल स्रोत तो ईश्वर ही है। सभी धर्मों के मौलिक सिद्धान्त ईश्वर द्वारा ही सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों को प्राप्त हुए, उन्हें ही मानवता के आध्यात्मिक साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ, वेदों में संकलित किया गया।

मौलिक सिद्धान्त सभी धर्मों के एक हैं। वे मानव-जाति की तरह प्राचीन हैं। धर्म के क्षेत्र में न तो इनमें कुछ वृद्धि की जा सकी, न ही भविष्य में कुछ

हो सकने की सम्भावना ही हो सकती है। कोई भी ऐसा धर्म-संस्थापक नहीं हुआ, जिसने कोई नवीन धर्म चलाया हो, अथवा कोई नवीन सत्य बताया हो। वे सन्देशवाहक मात्र ही थे, रचयिता नहीं।

वास्तविक धर्म तो एक ही है, जो सत्य तथा प्रेम पर आधारित है। धर्म का सम्बन्ध तो हृदय से है। सेवा, बलिदान तथा त्याग ही धर्म है। परोपकार, दया तथा सहिष्णुता धर्म ही हैं। सत्यता न हिन्दू है न मुस्लिम, यह न बौद्धों की बपौती है न ईसाइयों की ही। सत्य ही एक समान एवं शाश्वत अंग है और इसका अनुयायी प्रकाश, शान्ति, ज्ञान तथा आनन्द के मार्ग पर चलता है।

धर्म की अवनति के कारण तथा उत्थान के उपाय

अधिकार-लोलुपता तथा अज्ञान के कारण मनुष्य धर्म को भुला बैठा है। वह नास्तिक हो चुका है, पशुतुल्य हो गया है। नैतिकता उसमें रही नहीं है। वह विध्वंसकारी बन गया है। वह छुरी घोंपता है, घरों को आग लगाता है। न्याय का तो नाम ही नहीं रहा।

बौद्ध मत का प्रचार तो अधिसंख्यक करने लग गये, किन्तु कामनाओं तथा हिंसा का त्याग नहीं किया। ईसाई मत का प्रचार तो बढ़ा, किन्तु प्रेम तथा क्षमा का अभ्यास न किया गया। इस्लाम धर्म का प्रचार तो हुआ, किन्तु भ्रातृ-भावना देखने में नहीं आ पायी। हिन्दू धर्म का प्रचार तो हुआ, किन्तु प्राणी मात्र में एक दिव्य आत्मा के दर्शन न कर पाये। प्रचार तो जीवन-निर्वाह का माध्यम बन कर रह गया, और धर्माचरण से घृणा होने लगी।

इसलिए असत्य और मिथ्याचार के कारण जगत् में दुराचार फैला, न कि धर्म के कारण। धार्मिक आदर्शों के अनुयायियों के अभाव से दुराचार फैला। आवश्यकता तो इस बात की है कि सभी धर्मों के अनुयायियों को वास्तविक शिक्षा प्रदान की जाये। उनके सामने धार्मिक आदर्श रख कर उनके अनुसार आचरण पर बल दिया जाये। धर्माचरण रहित आदर्श, मनुष्य को भाग्यवादी बना देता है। यदि ज्ञान से मनुष्य के जीवन में परिवर्तन नहीं आया, तो ज्ञान व्यर्थ ही रहा।

निःस्वार्थता तथा प्रेम सिखाने से नहीं आते, इन्हें तो आचरण द्वारा ही दर्शाया जा सकता है; अत: प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्मानुसार चल कर गन्तव्य स्थान तक पहुँचने का प्रयत्न करे। सन्त तथा योगी बनाने पर ही धर्म बल दे, न कि मन्दिरों, मस्जिदों तथा गिरजाघरों के निर्माण पर।

धर्म और धार्मिकता

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

धर्म कैसे बनते हैं? भारत में अनेक पंथ और सम्प्रदाय हैं जैसे राधास्वामी पंथ आदि, क्या वे सब भी एक दिन धर्म बन जायेंगे?

धर्म बनने के लिये निश्चित नियम होते हैं। सबसे पहले उसकी अपनी एक पुस्तक होनी चाहिये और वह पुस्तक उसी आदमी को बनानी चाहिये जो भगवान की आवाज सुन सकता हो जैसे मुहम्मद साहब। अब हम लिखेंगे तो लोग कहेंगे कि स्वामी सत्यानन्द जी ने किताब लिखी है, लेकिन मुहम्मद

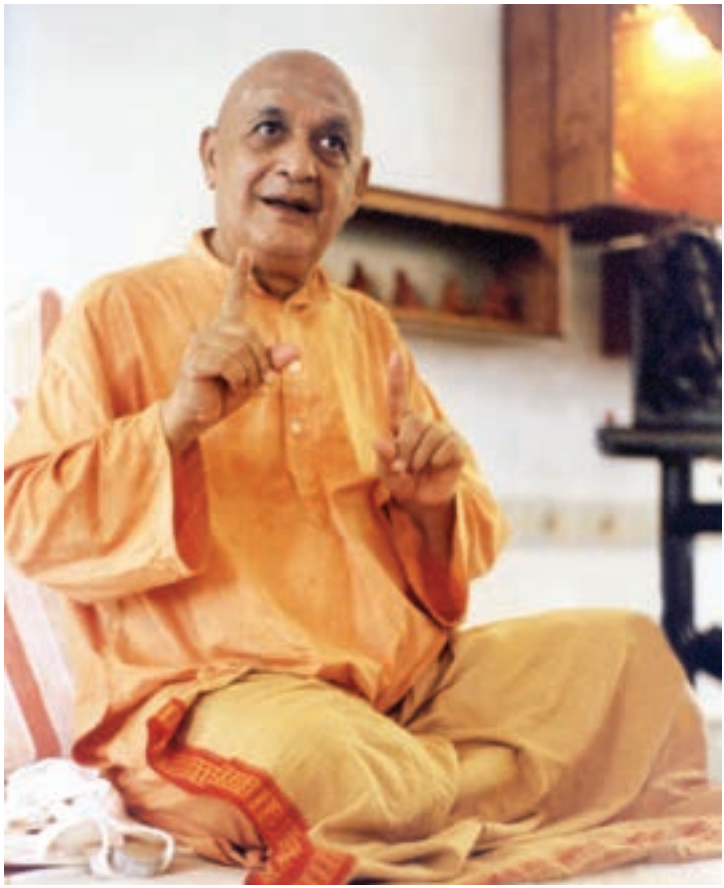

साहब तो पढ़े-लिखे आदमी नहीं थे, निरक्षर थे। भगवान ने उनसे कहा और उन्होंने बोलना शुरू कर दिया। इसी तरह बाईबिल के बारे में भी कहते हैं कि वह उद्घाटित हुई है।

केवल कोई अच्छा प्रचारक हो, अच्छी व्यवस्था हो, उसी से कोई धर्म नहीं बनता। धर्म के कुछ सिद्धान्त होने चाहिये। जैसे वैदिक धर्म के सिद्धान्त हैं मूर्ति पूजा, पुनर्जन्म, विवाहादि संस्कार, ब्रह्मचर्य आदि। अब ईसाई मत में मूर्ति पूजा को नहीं मानते हैं, पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं, तलाक को शुरू से मानते हैं, तो अलग धर्म हो गया। जब तुम नया धर्म बनाते हो तो उसमें कुछ नया स्रोत होना चाहिये। अब एक ही आम का संकरण करके दूसरा आम निकालो, नीलम निकालो, आम्रपाली निकालो, आखिर आम ही तो है वह, कोई नयी चीज थोड़े ही है। उसी तरह बौद्ध धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकला, जैन धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकला। बौद्ध धर्म को शुरू में राजाओं का आश्रय मिला, मगर बाद में हिन्दुस्तान में समाप्त हो गया। बाहर के देशों में इसको मान्यता मिली, आश्रय मिला तो वहाँ रह गया, सामाजिक व्यवस्था का अंग बन गया। धर्म को केवल एक दर्शन नहीं रहना चाहिए, बल्कि एक ऐसी सामाजिक प्रणाली बनना चाहिए जिसका देश के लोग अनुसरण करें। तभी वह धर्म बनता है।

हर एक धर्म में कट्टरता होती है, पर हमारे धर्म में ज्यादा नहीं है। तुम कोई चीज मानते हो या नहीं मानते हो, तुम्हारे ऊपर है। हमारे धर्म में लचीलापन है। भारत के लोगों को पश्चिमी संस्कृति, भाषा, तौर-तरीका लेने में कोई परेशानी नहीं होती। यहाँ की लड़कियाँ सिर के बाल काट सकती हैं, सलवार-कमीज, साड़ी, जींस, कुछ भी पहन सकती हैं, लड़के-लड़कियों ने हाथ भी मिलाना शुरू कर दिया। अगर लड़की ने सिर के बाल काट दिये तो क्या हुआ? उसने क्या गलत किया? अगर सिर से पल्लू उतर गया तो क्या हुआ? अब जब लड़की कहती है कि सिर पर पल्लू नहीं रखेंगे तो नहीं रखेंगे। उसके व्यक्तित्व या चरित्र पर क्या बुरा असर पड़ा? अगर साड़ी के बदले जींस पहनकर चलती है तो क्या फर्क पड़ा?

हमारे यहाँ लोगों ने धर्म की परिभाषा बहुत व्यापक और उदार कर दी। कोई भी कपड़ा पहनना है तो पहनो, बस ढंग से पहनो। एक बिंदु तक, जहाँ तक मर्यादा है, उस मर्यादा के अन्दर रहना धर्म है। मर्यादा का मतलब होता है दूसरों का ख्याल रखना। यही असली धार्मिकता है। अब अगर तुम्हारा

समाज कहता है कि लम्बे बाल रखो तो रख लो, क्या फर्क पड़ता है? भारतीय समाज जल्द बदल जाता है, मद्रास में लड़कियाँ कितनी पढ़ी-लिखी हैं, केरल की लड़कियाँ कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाती हैं! हिंदू धर्म में लचीलापन है, लेकिन जहाँ धर्म बहुत कट्टर हैं वहाँ यह सम्भव नहीं है।

राधास्वामी पंथ 'शब्द सुरत योग' है, हठयोग से निकला है। इसी तरह अलग-अलग पंथ होते हैं, ये धर्म नहीं हैं और न ही धर्म बन सकते हैं। कोई भी धर्म बिना काडर के, बिना संगठन के नहीं चल सकता है। हमलोगों का संन्यास टिका है क्योंकि हमारा संगठन है, एक नियम है। भले ही कोई संन्यासी जाकर शादी कर ले, मगर संगठन तो है। इसी तरह सिक्खों में संगठन है, काडर है। ग्रंथी, रागी आदि अलग-अलग नाम होते हैं उनके संगठन में, उनकी उचित शिक्षा और प्रशिक्षण होता है, वे टिके रहेंगे।

सिक्ख धर्म का वैदिक धर्म से कोई दार्शनिक विरोध नहीं है। विचारक या आलोचक कभी भी वैदिक धर्म और सिक्ख धर्म के बीच झगड़ा करा नहीं सकेंगे, दार्शनिक आधार पर तो बिल्कुल नहीं। वहाँ भी मुर्दों को जलाते हैं, हमारे यहाँ भी जलाते हैं। उनके यहाँ शादी होती है तो घूमते हैं, हमारे यहाँ भी वैसा ही होता है। हम आग के चारों ओर घूमते हैं, वे गुरु ग्रंथ साहिब के चारों ओर घूमते हैं, क्या फर्क पड़ता है? उनके यहाँ भी स्त्रियों में शील पर, पति-पत्नी के सम्बन्धों पर जोर दिया जाता है, हमारे यहाँ भी उस पर जोर दिया जाता है। सिक्ख, जैन और वैदिक धर्मों में कोई खास फर्क नहीं है। नाम भी उनका हमारे जैसा है, कपड़े भी वैसे ही हैं, गाने का तरीका भी वैसा ही है। हमारी सामाजिक गतिविधियाँ और तौर-तरीके भी उनके जैसे हैं। वे भी गुरु को मानते हैं, जमीन पर बैठकर खाते हैं, माने सामाजिक तरीके एक ही हैं। इसलिये सिक्ख, जैन या वैदिक धर्म में झगड़ा नहीं होगा। यह झगड़ा तभी होगा जब कोई राजनीति बीच में आयेगी।

राजनीति के बिना झगड़ा नहीं होगा। जैसे बौद्धों और हिन्दुओं का झगड़ा राजनीति की वजह से हुआ। अशोक बौद्ध बन गया और उसने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित कर दिया। झगड़ा हो गया। भारतीय मानसिकता कभी भी राष्ट्र को धर्म से जोड़ना नहीं चाहती। राजा का कोई धर्म नहीं होता है, उसे तो सब धर्मों को स्वीकार करना पड़ता है। अशोक ने यहाँ बौद्ध धर्म को राष्ट्रधर्म बनाया, उस अनुसार कानून बनाने शुरू किये, तब जाकर बवंडर उठा। अगर आज कोई कहे कि इस देश का धर्म हिन्दू है, बाकी धर्म गौण हैं तो हंगामा

मच जायेगा। हमलोग तो इसको स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि देखा जाए तो वैदिक धर्म स्वयं में कोई धर्म नहीं है। यह तो विविध विचारों का एक विशाल विश्वकोश है। सभी तरह के विचार और मत उसमें रहते हैं। कोई देवी जी को मानता है तो मांस-शराब सब कुछ चलता है, कोई विष्णु जी को मानता है तो प्याज-लहसून तक घर में नहीं आता। कुछ लोग शिवजी को मानते हैं तो बमबम महादेव चढ़ाते हैं। कोई कहता है दाढ़ी बढ़ाओ, कोई कहता है दाढ़ी मुड़वाओ, कोई कहता है जटा रखो, कोई कहता है लाल टीका लगाओ, कोई कहता है चंदन लगाओ। पंजाब, बंगाल, मद्रास या बिहार के लोगों के अपने-अपने तरीके हैं। अनेकता में एकता ही इस देश का दर्शन है। हमारे देश का सिद्धान्त यही है कि आओ कोई भी धर्मी, आओ कोई भी पंथी, सब के लिये खुला है मन्दिर यह हमारा। केवल इतना है कि ऐसा काम मत करो जो असामाजिक हो।

– 3 जनवरी 1998, रिखियापीठ

कर्म और धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भारत की आध्यात्मिक परम्पराएँ ध्यान करने के बजाय सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं। ध्यान तो मात्र एक साधन है, कर्मों की अवधारणा समझने, उनके प्रति सजगता विकसित करने और उन्हें सही ढंग से सम्पादित करने का। जो भी कर्म हमारे अहंकार को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है, वह एक ऐसी छाप छोड़ जाता है जो बन्धनकारी होती है। दूसरी ओर, जो कुछ भी हमारे अहंकार को एक रचनात्मक, सकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है, वह ऐसा कर्म होता है जो हमें अहंकार के बन्धन से मुक्त करता है। इसलिए लोगों को सत्कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए।

तुम्हें कोई व्यक्ति अनाप-शनाप कह देता है और तुम उसके शब्दों से प्रभावित होकर दुःख झेलते हो। यदि कोई मुझसे कहे कि 'तुम गधे हो', तो मैं जवाब दूँगा, 'हाँ, ठीक ही तो है, आखिर एक गधा ही तो दूसरे गधे को पहचान सकता है।' न तो मैं उस व्यक्ति की बात पर विश्वास करूँगा, न ही इस बात से उदास हो जाँऊगा कि किसी ने मुझे गाली दी। मैं अपने आप से कहूँगा, 'ठीक है, वह मुझे गधे के रूप में देखता है तो देखे। लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं गधा नहीं हूँ। फिर क्यों इस बात का प्रभाव अपने पर पड़ने दूँ? दूसरा व्यक्ति किसी प्रतिक्रिया के वशीभूत होकर अनाप-शनाप कह रहा है और मैं अपने ज्ञान और विवेक के बल पर इस परिस्थिति को समझ रहा हूँ।'

समस्याएँ तब खड़ी होती हैं जब तुम किसी क्रिया पर प्रतिक्रिया करते हो। अगर तुम किसी कर्म को समझकर स्वीकार कर लेते हो तब सद्भाव बना रहता है, लेकिन अगर तुम प्रतिक्रिया व्यक्त करते हो तब तो समस्याएँ खड़ी होंगी ही।

जब योग के अभ्यासों द्वारा हम अपने स्वभाव और कर्मों का सुनियोजन कर लेते हैं, तब हम जीवन की धारा में आसानी से बहने लगते हैं। इसी प्रशिक्षण को कर्मयोग कहते हैं। शरीर, मन और अहंकार द्वारा हम अचेतन, अवचेतन और चेतन स्तर पर जो भी कर्म करते हैं, उनके बीच पूरा तालमेल और समस्वरता रहती है।

जिन भी अनुभवों और परिस्थितियों से हमारा सामना होता है, उन सबसे हम कुछ-न-कुछ सीख सकते हैं। जब हम इन परिस्थितियों और संघर्षों का

सकारात्मक रूप से सामना करने में सक्षम हो जाते हैं तब यह सीखने की प्रक्रिया बन जाती है। हमें धर्म का पालन करना सीखना है, उसके विरुद्ध जाना नहीं। अगर तुम धर्म का अनुसरण करते हो, जीवन-धारा में सहजता के साथ बहते हो, सजगता और समझदारी का विकास करते हो, तो तुम मुक्त हो, स्वतंत्र हो। यदि तुम अपने धर्म का पालन नहीं करते, अपने ज्ञान का उपयोग नहीं करते, तब तुम्हारे कर्म तुम्हें बन्धन में डाल देंगे।

कर्म तभी फलदायी होता है जब वह धर्म से जुड़ा होता है। इसलिए कर्मों को सुनियोजित करने के लिए पहले मानव धर्म को पहचानो। मानव धर्म हमारा मौलिक दायित्व है। जब कर्म धर्म से जुड़ता है तब वह बदल जाता है, वह कर्त्तव्य बन जाता है। किसी कर्म को कर्त्तव्य के रूप में करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे धर्म के साथ जोड़ा जाय। धर्म शब्द का प्रयोग यहाँ पर किसी पंथ या सम्प्रदाय के सन्दर्भ में नहीं किया जा रहा है। धर्म हमारी बुनियादी जिम्मेदारी है। कर्मों को सम्भालने के लिए कर्त्तव्य को प्राथमिकता दो, कर्म को नहीं। अपने को जिम्मेदारी के साथ जोड़ो, क्योंकि वहाँ कर्म और धर्म का सुन्दर संयोग होता है। इस संयोग में सब

कुछ स्वाभाविक रूप से होने लगता है। रूप-रेखाएँ और योजनाएँ बन जाती हैं, कार्य सम्पन्न हो जाते हैं, उनके परिणाम भी सामने आ जाते हैं और जीवन-चक्र आगे बढ़ता जाता है।

जब तुम अपने घर-परिवार की देखभाल करते हो, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था करते हो, तब यह सब तुम अपना कर्त्तव्य मानकर करते हो। अपनेपन का भाव तुम्हें अपने परिवार से सम्बन्धित सारी गतिविधियों के प्रति सजग रखता है। यदि कहीं कुछ गड़बड़ होने लगती है तो तुम फौरन कोई-न-कोई कार्यवाही करते हो और इसको तुम अपना कर्त्तव्य मानते हो। यदि परिवार के दो सदस्य आपस में झगड़ने लगते हैं तो तुम जाकर उन्हें झगड़ने से मना करते हो। ऐसा करना तुम अपना फर्ज समझते हो, इसे तुम कर्म नहीं मानते। जो भी कर्म धर्म को उत्पन्न करता है, जिस भी कर्म के माध्यम से एक सकारात्मक और रचनात्मक परिवेश का सृजन होता है, वह कर्त्तव्य होता है। इसी कर्त्तव्य-भाव को कर्मों से जोड़ना है।

यदि तुम जीवन में अपने द्वारा किए गए हर एक कार्य को कर्म नहीं, कर्त्तव्य समझने लगोगे तब तुम एक कर्मयोगी कहलाओगे। इसलिए कर्मयोगी बनने के लिए सिर्फ अपने कर्मों को सिद्ध करना है। यह कैसे सम्भव है? उस वृक्ष जैसा बनकर जो सबको समान रूप से फल देता है, चाहे कोई उस वृक्ष पर चढ़कर

फल तोड़े या फल नीचे गिराने के लिए पत्थर मारे या फल को पा लेने के लिए वृक्ष को ही काट डाले। हर एक अवस्था में पेड़ का कर्त्तव्य होता है फल देना। प्रकृति हमेशा अपने कर्त्तव्य का पालन करती है, जबकि मनुष्य कर्म का अनुसरण करता है। प्रकृति सभी को समान भाव से देखती है, लेकिन मनुष्य अपने कर्मों के कारण अपने आप को अहमियत देता है। जब कर्त्तव्यों का पालन होता है तब हर व्यक्ति को बराबर की अहमियत मिलती है। कर्मयोगी बनने का सरल तरीका है कर्मों को धर्म के

साथ जोड़ देना। और अगर तुम साधना के मार्ग से कर्मयोगी बनना चाहते हो, अगर तुम अपने जीवन की विक्षिप्त वृत्तियों को शान्त कर प्रगति करना चाहते हो, तब तुम अपने अंतःकरण के चार आयामों – मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के साथ समझौता करना सीखो। इनमें सबसे बड़ा समझौता करना होगा अहंकार के साथ।

अहंकार अन्तिम अवरोध है। अहंकार सबसे अधिक कष्ट देता है, क्योंकि यह हमें स्वयं के प्रति सजग बनाता है, हमें हमारे नाम, यश, पद और प्रतिष्ठा का ख्याल कराता है। यह हमें पूरी तरह स्व-केन्द्रित बना देता है। और यह अहंकार ही है जो हमें कर्मों के बन्धन में जकड़ देता है और हमें धर्म से विमुख कर देता है। इसी वजह से हम कर्म को जिम्मेदारी के बजाय बोझ समझते हैं। और यह अहंकार इच्छाओं और कामनाओं द्वारा पोषित होता रहता है।

अहंकार को सम्भालने के लिए अपने आप से समझौता करना आवश्यक है, क्योंकि जब तक अहं भाव बना रहेगा तब तक अपने परिवेश के साथ तुम्हारी क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहेगी, दूसरों के साथ संघर्ष होता रहेगा। तुम्हारी प्रतिक्रियाओं में मन की नकारात्मक वृत्तियाँ ही अभिव्यक्त होंगी। तुम दूसरों के कथनों पर प्रतिक्रिया करोगे और उनसे बदला लेने की कोशिश करोगे। जब तक अहंकार नियंत्रण में नहीं आता, तब तक समझौता नहीं होता। और जब अहंकार नहीं रहता, तब समझौता आसानी से हो जाता है और कर्म कर्मयोग में बदल जाता है।

मानव धर्म का पालन करते जाओ, अहंकार को सिर मत उठाने दो, दूसरों की परिस्थिति, चिन्तन और आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करो, और जिस तरह अपनी भलाई के लिए काम करते हो, वैसे ही दूसरों के उत्थान के लिए भी प्रयासरत रहो। ये कर्मयोगी के लक्षण हैं। कर्मयोग एक आन्तरिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम अपने चरित्र को विक्षेपरहित और परिष्कृत बना सकते हैं।

जब हम कर्म के साथ योग शब्द को जोड़ते हैं, तब इसका तात्पर्य एक ऐसी क्षमता से होता है जिसके द्वारा हम मन और अहंकार के थपेड़ों से अप्रभावित रहते हुए अपनी जीवन-यात्रा सहजता और सुगमता से संपन्न करते हैं, अपने कर्मों को सकारात्मक, सृजनात्मक और उत्कृष्ट बनाने का प्रयास करते हैं। यही कर्मयोग की सम्पूर्ण प्रक्रिया है।

– 28 फरवरी 2010, मुंगेर

स्वधर्म की महिमा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

जिस तरह डॉक्टर अलग-अलग लोगों के लिए उनकी शारीरिक संरचना और बीमारी की प्रकृति के हिसाब से अलग-अलग दवाइयाँ लिखते हैं, उसी तरह हिंदू धर्म भी अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग कर्तव्य निर्धारित करता है। लेकिन अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, स्वच्छता और इंद्रियों पर नियंत्रण जैसे नियम सभी के लिए समान कर्तव्य हैं। इस विषय में श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है –

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:॥3.35॥

अर्थात् किसी दूसरे के अच्छे से निभाए गए कर्तव्य से, अपना स्वयं का कर्तव्य श्रेष्ठ है, भले ही वह गुणहीन हो। अपने कर्तव्य में मर जाना श्रेष्ठ है, दूसरे का कर्तव्य भय से भरा है।

धर्म समय, परिस्थिति, उम्र, विकास के स्तर और व्यक्ति के जाति-समुदाय पर निर्भर करता है। इस सदी का धर्म दसवीं सदी के धर्म से अलग है। मनुष्य के जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ हैं। उसे इन कर्तव्यों को सही तरीके से निभाकर नैतिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित होना चाहिए। उसे ईश्वर के विधान के अनुसार कार्य करना और जीना चाहिए। उसे आचरण के नियमों और अपनी जिम्मेदारियों का पता लगाना चाहिए। तभी वह सही मायने में मनुष्य कहलाएगा।

मनुष्य के अपने माता-पिता, बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति कर्तव्य हैं। समाज और देश के प्रति उसके कर्तव्य हैं। वर्णाश्रम के प्रति उसके कर्तव्य हैं। अपने प्रति उसके कर्तव्य हैं और सबसे अहम बात यह है कि ईश्वर के प्रति भी उसके महत्त्वपूर्ण कर्तव्य हैं। उसे अपने जीवन के इन सभी कर्तव्यों को अच्छे ढंग से पूरा करना चाहिए। तभी वह जीवन में प्रगति कर सकता है।

उसे अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए जिन्होंने उसे यह भौतिक शरीर दिया है। उसे उनकी सेवा बड़ी श्रद्धा और भावना के साथ करनी चाहिए।

तैत्तिरीय उपनिषद् में आप पायेंगे – *मातृदेवो भव, पितृदेवो भव* – माता-पिता की पूजा भगवान के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि के रूप में की जानी चाहिए।

मनुष्य को अपने स्वभाव, रुचि और क्षमता के अनुसार समाज की सेवा करनी चाहिए। ऐसी सेवा उसके मन को शुद्ध करने में सहायक होगी। उसे निष्काम भाव से सेवा करनी चाहिए। उसे कोई पारिश्रमिक नहीं मिलना चाहिए। उसे देशभक्ति की भावना विकसित करनी चाहिए। उसे देश की सेवा करनी चाहिए। देश की सेवा माँ काली की सेवा है। यह शुद्ध मातृ-पूजा है।

समाज में शांति और व्यवस्था तभी कायम रहेगी जब सभी लोग अपने-अपने कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक पालन करेंगे। नैतिकता और कर्तव्य परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ परिस्थितियों में बुराई का विरोध करना मनुष्य का कर्तव्य बन जाता है। एक राजा को अपने देश में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए हमेशा दंड की छड़ी उठानी चाहिए। वह यह नहीं कह सकता कि '*अहिंसा परमो धर्मः*, इसलिए मैं बुराई का विरोध नहीं करूँगा।' अगर वह दुष्टों को दण्ड नहीं देगा तो वह अपने कर्तव्य के निर्वहन में विफल हो जाएगा। उसका देश पूरी तरह से अराजकता की स्थिति में होगा।

हिंसा और अहिंसा सापेक्ष शब्द हैं। ऐसे व्यक्ति को मारना जो कई लोगों की जान ले रहा हो, अहिंसा है। नरभक्षी बाघ को गोली मारना अहिंसा है। क्या अब आपको अहिंसा का रहस्य समझ में आ गया? किसी कुत्ते या घोड़े को गोली मारना जो तीव्र पीड़ा से पीड़ित है और जिसका निवारण नहीं किया जा सकता, एक यूरोपीय के लिए अहिंसा है। वह कुत्ते को पीड़ा से मुक्त करना चाहता है। उसका उद्देश्य अच्छा है।

अमृत के पुत्र! अमरता की संतान! सभी दुर्बलताओं को दूर भगाओ। खड़े हो जाओ। कमर कस लो। अपने जीवन की अवस्था के अनुसार अपने स्वधर्म का पालन करो। आध्यात्मिकता में तेजी से आगे बढ़ो। शाश्वत आनंद, परम शांति और अनंत ज्ञान केवल भगवान में ही मिल सकता है। स्वधर्म का अभ्यास करने से निश्चित रूप से भगवत्-चेतना की प्राप्ति होगी। सीमित वस्तुओं में कोई सुख नहीं है। अनंत में ही आनंद है। स्वधर्म के अभ्यास से सत्य को समझो। यह संसार मिथ्या है। यह मृगतृष्णा के समान है। इन्द्रियाँ और मन तुम्हें हर क्षण धोखा देते हैं। जागो। अपनी आँखें खोलो। विवेक करना सीखो। अपनी इन्द्रियों पर भरोसा मत करो। वे तुम्हारी शत्रु हैं। मनुष्य जन्म मिलना बहुत कठिन है। जीवन छोटा है। समय क्षणभंगुर है। जो लोग संसार की मिथ्या वस्तुओं से चिपके रहते हैं, वे वास्तव में आत्महत्या कर रहे हैं। अपने स्वधर्म का पालन करने के लिए कठोर संघर्ष करो। आदर्श को हमेशा अपनी आँखों के सामने रखो। जीवन का एक कार्यक्रम बनाओ। आदर्श को साकार करने का प्रयास करो। जोंक की तरह दृढ़ता के साथ स्वधर्म पर अड़े रहो। इसका अभ्यास करो और अभी इसी क्षण सच्चिदानंद अवस्था को प्राप्त करो।

प्रभु का आशीर्वाद आप पर बना रहे! आनंद, परमानन्द, अमरता, शांति और संतुलन आप सभी के साथ हमेशा बना रहे! स्वधर्म की जय हो, जय हो!

मेरा धर्म

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मैं जो कुछ करता हूँ – गुरुदेव के मन्तव्य की अभिपूर्ति के लिए ही, कुछ अपनी सकामनिष्ठा से नहीं। इसलिए एक दिन किसी के ऊपर सूर्य की तरह प्रचण्ड किरणें बरसानी पड़ती हैं और दूसरे दिन स्निग्ध चन्द्रमा के सदृश पेश आना पड़ता है। एक दिन किसी के चरण स्पर्श करते हुए यदि मुझे हर्ष होता है तो दूसरे दिन किसी के अन्दर टेढ़ी उंगली डालते हुए भी मैं अपने को निर्दोष ही समझता हूँ।

– योग-वेदान्त के अप्रैल 1954 अंक से साभार उद्धृत

सनातन धर्म और युग धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अध्यात्म और धर्म एक नहीं होते, दोनों में अन्तर होता है। अध्यात्म को बाद में धर्म का रूप दिया गया। एक उदाहरण देता हूँ। जब मानवता का जन्म हुआ था, उस समय कौन-सा धर्म था? सत्ययुग में कौन-सा धर्म था? जब अवतारों का युग था तब कौन-सा धर्म था? शैव नहीं था, शाक्त नहीं था, ईसाई नहीं थे, मुसलमान नहीं थे, सिक्ख नहीं थे, बौद्ध नहीं थे, जैन नहीं थे, हिन्दू नहीं थे, कौन थे? श्रीकृष्ण का काल आया, उस समय कौन-सा धर्म था? न जैन था, न बौद्ध था, न हिन्दू था, न ईसाई था, न और कुछ था। उन लोगों का कौन-सा धर्म रहा जिसको आज कहते हो कि यह हमारा धर्म है? आप जिस धर्म का पालन करते हो वह युग धर्म है और हमारे पूर्वजों ने जिस धर्म का पालन किया वह सनातन धर्म है।

युग धर्म और सनातन धर्म, ये दो अलग होते हैं। सनातन धर्म मनुष्य को प्रकृति और ईश्वर से जोड़ कर रखता है, दोनों में कभी अन्तर नहीं होता। ईश्वर का स्वरूप प्रकृति में दिखता है, प्रकृति की अभिव्यक्ति ईश्वर में होती है और जीव उस लीला का, उस कार्य का साक्षी होता है। साक्षी होकर वह प्रकृति और ईश्वर के नियमों का पालन करते हुये अपने जीवन का सदुपयोग करता है, जीवन की अच्छाई को प्रकट करता है। यह होता है सनातन धर्म।

इसी को मैं थोड़ा विस्तार से समझाने वाला हूँ, क्योंकि लोग इस सनातन धर्म को वैदिक धर्म और हिन्दू धर्म जैसे तरह-तरह के नाम दे देते हैं। लेकिन हम हिन्दू नहीं हैं, हिन्दू तो एक नाम है जो पाश्चात्य सभ्यता के लोगों ने सिन्धु घाटी में रहने वालों को दिया। चूँकि उनकी भाषा में 'स' और 'ह' का उच्चारण एक प्रकार से होता है, तो सिन्धु हिन्दू हो गया। यह तो पाश्चात्य सभ्यता की देन है, लेकिन यह हमारी पहचान नहीं है। अगर तुम्हें पाश्चात्य सभ्यता के ठप्पे को लगाकर गर्व होता है और लगता है कि इससे हमारी विश्व में पहचान हो तो यह तुम्हारी अपनी व्यक्तिगत कमजोरी है, लेकिन धर्म और जाति हमलोगों की सनातन है।

इसका संकेत मिलता है वैदिक काल से, जब मनुष्य प्रकृति के अनुसार अपना जीवन यापन करता था और ईश्वर की भक्ति करता था। वह ईश्वर

भक्ति जो बिना किसी सम्प्रदाय की थी, उसको कहते हैं सनातन। जब सम्प्रदायों का निर्माण होता है तो सनातन-विचार युग-विचार में बदल जाता है, सनातन-कर्त्तव्य युग-कर्त्तव्य में बदल जाता है, सनातन-धर्म युग-धर्म में परिवर्तित होता है। युग-धर्म की आयु होती है, क्योंकि वह हमेशा के लिये जनता की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता, सिर्फ एक समय के लिये जिसकी अवधि निश्चित होती है। मनुष्य के ज्ञान, श्रद्धा और विश्वास का दायरा तो बढ़ते जाता है, उसकी समझ, बुद्धि,

रहन-सहन और चिंतन में परिवर्तन होता है तो क्या एक प्राचीन युग-धर्म आज भी प्रासंगिक है? नहीं। आज क्या प्रासंगिक है? सनातन-धर्म जो किसी साम्प्रदायिक विचार को लेकर नहीं चलता, बल्कि वह एक समझ देता है अपने बारे में, प्रकृति और ईश्वर के बारे में।

हमलोग जिसको सनातन-धर्म कहते हैं उसमें सभी मनीषियों और अवतारों का समन्वय है। स्थूल दृष्टि से अगर देखोगे तो सब अलग ही दिखलाई देंगे। बाहर से राम, कृष्ण, परशुराम, वामन आदि सब अलग दिखलाई देंगे, लेकिन ये वास्तव में हैं कौन? ये सब तो एक ही स्वरूप के विभिन्न अवतार हैं। और अवतार किसके? भगवान नारायण के। नारायण के चौबीस अवतार माने जाते हैं जिनमें प्रमुख हैं दस, और इन अवतारों का कारण क्या है? गीता में कृष्ण जी कहते हैं – *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे*। ये तीन प्रयोजन बतलाये हैं। पहला प्रयोजन, *परित्राणाय साधूनां* – अच्छे लोगों को प्रसन्नता, प्रेरणा और ऊर्जा प्रदान करने के लिये। दूसरा, *विनाशाय च दुष्कृताम्* – दुष्टों को, दुष्ट प्रवृत्ति को, दुष्कर्म को, दुर्व्यवहार को समाप्त करने के लिये। तीसरा, *धर्मसंस्थापनार्थाय* –धर्म की स्थापना के लिये। ये तीन प्रयोजन होते हैं एक अवतार के, और इन तीन प्रयोजनों को अगर आप समझ लोगे तो आप सनातन धर्म को भी समझ पाओगे।

पहला प्रयोजन है अच्छे लोगों के जीवन में प्रसन्नता को लाना। यहाँ पर अच्छाई और बुराई को सामाजिक स्तर पर नहीं, बल्कि अपने जीवन से जोड़कर देखो क्योंकि जो तुम्हारे जीवन की अभिव्यक्ति है वही तो बाद में सामाजिक अभिव्यक्ति भी बनती है। तुम्हारा जीवन अभी तमस् से युक्त है। तमस् का मतलब होता है स्वार्थपरक समझ, व्यवहार और दृष्टिकोण। जो अपनी ओर देखता हो, जो अपने स्वार्थ को पूरा करना चाहता हो, जो अपने को संतुष्ट करना चाहता हो, जो अपने सुख के लिये कार्य करता हो उसको कहते है तामसिक व्यक्ति। उसकी वृत्ति अपने में ही समायी है, अपने ही सुखभोग की खोज करता है और दूसरों की परवाह नहीं करता। जब हमलोगों के जीवन में यह तामसिक अवस्था है तब फिर हमारे द्वारा समाज में जितने भी कर्म होते हैं वे आत्म-संतुष्टि के लिये ही किये जाते हैं, किसी दूसरे व्यक्ति के हित के लिये नहीं। अगर दूसरे व्यक्ति के हित के लिये काम होता है तब फिर आत्म-संतुष्टि का वहाँ पर कोई स्थान नहीं, वहाँ फिर अपना बलिदान है, अपना त्याग है।

यह हमलोगों की तमोवस्था है जहाँ पर हर व्यक्ति अपनी ही देख-रेख, अपना ही ख्याल करता है और दूसरों की परवाह नहीं करता। हमारा यह शरीर तामसिक है, मन तामसिक है, भावना तामसिक है। हमारे भीतर काम है, क्रोध है, छल है, कपट है, ईर्ष्या है, द्वेष है, घृणा है। तरह-तरह की चीजें हैं, अच्छी भी और बुरी भी, लेकिन सहज रूप से जीवन में किसकी अभिव्यक्ति होती है? क्रोध बहुत सहज होता है, भय का अनुभव करना बहुत सहज है, ईर्ष्या अपने ही आप प्रकट होती है, किसी ने सिखलाया नहीं है कि लोगों से ईर्ष्या कैसे करनी है, वासना अपने आप प्रकट होती है, किसी ने बतलाया नहीं है कि वासना को प्रकट करने के लिये क्या प्रयास करना पड़ता है। हमारे जीवन और मन की जितनी भी संकीर्ण स्थितियाँ और अवस्थाएँ हैं, जो हमें भौतिक धरातल से बाँधकर रखती हैं, वे पहले प्रकट होती हैं, जबकि जीवन की अच्छाई बाद में प्रकट होती है। उसके लिये सोचना पड़ता है कि कैसे हम अच्छाई को प्राप्त करें, लेकिन बुराई की अभिव्यक्ति हर व्यक्ति में सहज रूप से होती है।

इस चीज को बदलना है और यह परिवर्तन हमलोगों का पारिवारिक और सामाजिक परिवर्तन है। इस सकारात्मक परिवर्तन को प्राप्त करना सनातन धर्म का एक विषय है। केवल आराधना और कर्म-काण्ड सनातन धर्म का विषय नहीं है, बल्कि अपने जीवन की गुणात्मक वृद्धि सनातन धर्म का मूल विषय

रहा है। सनातन धर्म ने हमेशा तमस् से हटकर सत्त्व में स्वयं को स्थापित करने का प्रयास किया है।

अन्तिम सत्य

जिन मनीषियों ने सनातन धर्म का प्रचार किया, अन्त में एक निर्णय पर आते हैं। वेदों में देख लो, वहाँ अन्तिम वाक्य लिखा है – नेति, नेति। 'न इति, न इति' का मतलब होता है यह अन्तिम निर्णय नहीं है। यह मेरा अनुभव रहा है, लेकिन हो सकता है कि तुम्हारा अनुभव इससे और आगे का हो। इसलिये मैं 'नेति, नेति' कह रहा हूँ, यह अन्तिम शब्द नहीं है। जिस सत्य को मैंने खोजा वह तो मेरी बुद्धि ने खोजा है। इस सत्य का मैंने अनुभव किया, तुमने नहीं। मेरे लिये यह सत्य है, लेकिन हो सकता है कि तुम्हारे लिये न हो। जब तुम प्रयास करोगे तुम्हें कुछ दूसरी अनुभूति हो सकती है। इसलिये ज्ञान का इतना विशाल संकलन करके भी हमारे मनीषियों ने कोई निश्चित निर्णय नहीं लिया, बस 'नेति, नेति' कह दिया। लेकिन अन्य धर्मों के संस्थापकों और प्रवर्तकों ने तो अन्तिम निर्णय लिया। कहा कि ऐसा ही करना होगा, तभी तुम्हारा मोक्ष संभव है। यही अन्तर है सनातन धर्म में तथा युग धर्म में। सनातन धर्म एक व्यापक मानसिकता को लेकर चला, जबकि युग धर्म एक निश्चित और संकीर्ण मानसिकता को लेकर चले।

महात्मा बुद्ध बौद्ध नहीं, हिन्दू थे। उन्होंने जो साधना और तपस्या की, वह यौगिक और वैदिक थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् ही उनके शिष्यों ने उनके विचारों का संग्रह करके बौद्ध मत का विकास किया। ईसा मसीह खुद ईसाई नहीं थे। वे तो यहूदी थे, और उनकी मृत्यु के पश्चात् ईसाई मत की स्थापना होती है। क्या अन्य पैगम्बर भी उन सम्प्रदायों के थे जो आज उनके अनुयायी बतलाते हैं? नहीं। तो कौन थे वे? उन्होंने एक पूर्व साधना को अपने जीवन में अपनाया था और वह साधना थी सनातन। हम भी सनातन बात करते हैं, लेकिन जो लोग कहते हैं कि 'स्वामीजी ने ऐसा कहा', वे 'स्वामीजी' का नाम जोड़कर इसे साम्प्रदायिक बना देते हैं। दस पीढ़ियों के बाद 'स्वामीजी' के वचन ही आप्त-वचन माने जायेंगे और इसलिये 'स्वामीजी' का भी अलग सम्प्रदाय खुल जायेगा। लेकिन आज जो बात हम बोल रहे हैं वह साम्प्रदायिक तो नहीं है। हम आपको समझा रहे हैं कि अपने देश की सनातन परम्परा क्या है।

सनातन धर्म का क्या प्रयोजन था? मनुष्य के जीवन से दुर्गुण दूर हो जाएँ और जीवन सकारात्मक एवं सात्त्विक हो, यह एक प्रयोजन था। मनुष्य अपने कर्मों से भागे नहीं, बल्कि कर्म में और संलग्न हो जाए, यह दूसरा प्रयोजन था। मनुष्य कर्मठ रहे और अपने जीवन में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष, चारों के लिए प्रयास करे, यह सनातन धर्म का लक्ष्य था। ईश्वर में श्रद्धा रखे और अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रखे, यह सनातन धर्म की शिक्षा है। क्या यह एक साम्प्रदायिक शिक्षा है या मानवता के लिये सनातन शिक्षा है? सनातन परम्परा में वही बात कही जाती है, वही व्यवस्था की जाती है, उसी अनुशासन की बात कही जाती है जिसे हम अपने जीवन में लागू कर सकें। यह अनुशासन यम-नियम का है; सेवा, प्रेम और दान का है। ये सनातन धर्म के अनुशासन हैं, इनके बिना मनुष्य अपनी स्वार्थवृत्ति से ऊपर नहीं उठता है, इनके बिना मनुष्य देव-तत्त्व में श्रद्धा नहीं रखता है, स्वयं पर विश्वास नहीं करता है। हमारी सनातन परम्परा विश्व की सर्वश्रेष्ठ परम्परा है, क्योंकि इसमें किसी विशेष मान्यता को

स्थान नहीं दिया गया है, बल्कि जीवन के सद्गुणों को अपनाने के लिये प्रेरित किया जाता है। जो धर्म का आचरण करे, जो न्याय-संगत कर्म करे उसको हमलोग सनातन धर्मावलंबी मानते हैं।

सनातन धर्म में जो आराधना होती है वह वास्तव में ईश्वर की आराधना नहीं, जीवन की आराधना है, क्योंकि ईश्वर को तो सामान्य व्यक्ति अपने से अलग देखता है, 'ईश्वर अलग और मैं अलग'। ईश्वर के सामने हम अपने हाथ फैलाकर अपनी कामनाएँ बोल देते हैं और चाहते हैं कि भगवान हमारी सभी इच्छाओं को पूरा कर दे ताकि हमारा भौतिक जीवन सुखद बीते। सनातन परम्परा में हम अपने ही जीवन की प्रतिभा को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। ईश्वर पर आश्रित जरूर होते हैं, लेकिन वासना को लेकर नहीं, श्रद्धा को लेकर आश्रित होते हैं। ईश्वर से हमारा सम्बन्ध किसी कामना को लेकर नहीं होता, बल्कि श्रद्धा को लेकर होता है और यही मुख्य अन्तर है सनातन और युग धर्म में। आखिर ईश्वर का रूप क्या है? हमारी संस्कृति में ईश्वर के दो स्वरूपों की चर्चा की गई है – एक है साकार, दूसरा है निराकार। दोनों में ज्यादा अन्तर भी नहीं है, क्योंकि तत्त्व तो एक ही है।

ईश्वर का साकार और निराकार स्वरूप

एक उदाहरण देकर समझाता हूँ। एक नदी में जल का प्रवाह हो रहा है, क्या तुम उस जल पर चलकर नदी के दूसरे किनारे जा सकते हो? नहीं जा पाओगे, क्योंकि जल पर चलना संभव नहीं है। लेकिन अगर वही नदी ठंढ के दिनों में बर्फ बन जाये तो उस बर्फ पर तुम चलकर आसानी से नदी को पार कर सकते हो। वही बर्फ बाद में फिर जल बन जाय तो तुम उसको पार नहीं कर पाओगे। जल-तत्त्व एक है, लेकिन उसके दो रूप हैं, तरल और ठोस। ठोस बर्फ साकार रूप है, तुम उसका उपयोग कर सकते हो और जो तरल रूप है वह निराकार है। हमारे मनीषियों ने कहा कि तुम बर्फ को पकड़ो और धीरे-धीरे वह तुम्हारे हाथ में पिघलेगा तो तुम साकार से निराकार को समझ पाओगे। तत्त्व वही है, एक तरफ घना है और दूसरी तरफ तरल है। बर्फ को हाथ में ले लो, साकार है, रखे रहो हाथ में पाँच मिनट, हाथ की गर्मी से वह बर्फ का टुकड़ा अपने ही आप पुनः पानी हो जायेगा, निराकार हो जायेगा, फिर उसको तुम पकड़ नहीं पाओगे, वह अपने ही आप बह जायेगा। साकार और निराकार में यही अन्तर है।

चाहे तुम राम को देखो, कृष्ण को देखो, देवी को देखो, वह रूप बर्फ की तरह है। उनको पकड़े रहो, उनकी आराधना करते रहो, उनको प्राप्त करने की चेष्टा करते रहो तो देखोगे कि धीरे-धीरे साकार निराकार में परिवर्तित हो जाता है। अर्जुन ने कृष्ण जी से गीता के बारहवें अध्याय में इसी विषय पर प्रश्न पूछा था कि भगवन्! जो आपको हमेशा साकार रूप में पूजते हैं और जो आपको निराकार रूप में देखते है, दोनों में कौन उत्तम है –

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥12.1॥

भगवान कहते हैं कि दोनों अलग-अलग स्थितियाँ हैं, यहाँ उत्तम और निम्न का प्रश्न नहीं, बल्कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। कुछ लोग निराकार पर जोर देते हैं, लेकिन उस निराकार का तुम अनुभव कैसे कर पाओगे, उसे तुम देख कैसे पाओगे, क्योंकि मन तो निराकार है नहीं। मन का तो एक साकार रूप है और साकार क्या उस निराकार का अनुभव कर पायेगा? मन तो उस साकार तत्त्व को भी नहीं जान पाता, तब निराकार को क्या जानेगा? मन तो उसको भी नहीं जान सकता जो सामने दिखलाई देता है, फिर उस अव्यक्त, अनादि, अचिंत्य तत्त्व को कैसे समझ पायेगा? किसी ने हमारे गुरुजी से प्रश्न किया था कि क्या इस जीवन में आत्म-साक्षात्कार संभव है? उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'नहीं। आत्म-साक्षात्कार किसी के लिये भी संभव नहीं है।' उनसे फिर पूछा गया, 'तो क्या सभी धर्म और दर्शन गलत हैं जो कहते हैं कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है।' उन्होंने कहा, 'नहीं, गलत नहीं हैं, लेकिन इस बात को याद रखो कि जिस अनुभव को तुम प्राप्त करना चाहते हो वह अतीन्द्रिय है, इन्द्रियों से भी परे है। और तुम उस अनुभव को अपनी इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त करना चाहते हो, जो कभी संभव नहीं है।' हवा को अपने हाथ में तुम पकड़ पाओगे क्या? नहीं। इसी तरह जो इन्द्रियों के क्षेत्र में नहीं है उसको इन्द्रियाँ कैसे ग्रहण कर पाएँगी? ईश्वर इन्द्रियों के क्षेत्र में नहीं है। इन्द्रियाँ उस ईश्वर की अनुभूति को कैसे प्राप्त कर सकती हैं? इसलिये हमारी आध्यात्मिक साधनाओं का प्रयोजन ईश्वर-अनुभूति नहीं है, बल्कि अपने आपको तैयार करना, अपनी पात्रता को बढ़ाना है ताकि एक दिन हमारा पात्र उस दिव्य ऊर्जा से भर सके। अगर उतना हमसे हो जाता है तो वह हमारे जीवन की उपलब्धि है।

– 11 सितम्बर 2015, पादुका दर्शन, मुंगेर

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मैं योग में शामिल होना चाहूँ तो क्या मुझे अपना धर्म छोड़ना पड़ेगा?

धर्म तो तुम्हारा निजी मामला है। वह तुम्हें चाहिये या नहीं, उसकी तुम्हें जरूरत है या नहीं, यह तो तुम्हें खुद ही सोचना होगा। यह किसी दूसरे द्वारा निश्चित नहीं हो सकता। तुम चश्मा लगाते हो। उसे निकालकर फेंक दो, यह कहना मेरा काम नहीं है। यह फैसला तुम्हें करना है कि वह तुम्हारे लिए आवश्यक है या नहीं। अगर तुम समझते हो कि तुम्हारा चश्मे का पॉवर पर्याप्त नहीं है, तो चश्मेवाले के पास जाकर बदलवा लो। मैं तुम्हें उसे फेंकने के लिए कैसे कह सकता हूँ? तुम गरम ऊनी स्वेटर पहने हुए हो और शायद तुम्हें वास्तव में उसकी जरूरत नहीं है, मगर उसे फेंक देने के लिए मैं नहीं कह सकता। हाँ, तुम चाहो तो उसे जरुर फेंक सकते हो या बदल सकते हो या फिर उसी पुराने वाले को चलाते रहो। यह सब तुम्हारा निजी मामला है। कोई दूसरा आदमी इसमें दखल नहीं दे सकता। उसी प्रकार धर्म व्यक्तिगत मामला है, तुम्हें और भगवान को छोड़कर कोई दूसरा आदमी इसमें कुछ नहीं कर सकता है।

क्या आप कहना चाहते हैं कि योग कोई धर्म नहीं, मगर वह धार्मिक चेतना को विकसित तो करता है?

हाँ, योग निश्चित ही कोई धर्म नहीं है, योग तो एक विज्ञान है। वह आंकड़ों और तथ्यों पर आधारित व्यवस्थित विज्ञान है। योग शरीर और मन से सीधे और घनिष्ठ रूप से संबंधित है। जो भी लोग आन्तरिक अनुभव पाना चाहते हैं और इस प्रयत्न में दूसरी कई विधियों को आजमाकर हार चुके हैं, उनके लिए निश्चित रूप से योग का अभ्यास अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध होगा।

योग मानसिक शुद्धता देता है और सभी क्रियाकलापों में मन के व्यवहारों को नियंत्रित करता है। धार्मिक जीवन जीने के इच्छुक व्यक्ति योग के उपहारों का भरपूर उपयोग कर सकते हैं। दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं जो अधार्मिक हैं, जिन्हें धर्म पर बिल्कुल श्रद्धा-विश्वास नहीं है और जो धर्म को कतई पसंद नहीं करते। किन्तु जो स्वस्थ शरीर, शान्त मन और कर्मठ जीवन जीना चाहते हैं, ऐसे लोगों को योग से सहयोग और सफलता मिलेगी।

जैसे जेब में रुपये रहने पर तुम बाजार से अपनी इच्छानुसार कोई भी सामान खरीद सकते हो, वैसे ही निर्मल मन, नियन्त्रित चेतना और स्वस्थ शरीर रहने पर तुम अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के साथ पूर्णता का जीवन बिता सकते हो।

मूल संस्थापक की मृत्यु के बाद बहुत-से धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदाय क्यों समाप्त हो जाते हैं?

इसलिए कि वे सब स्वप्न होते हैं जो जल्द गायब हो जाते हैं। वे छिन्न-भिन्न हो जाते हैं क्योंकि उनमें परम्परा नहीं होती। आज तुम्हारा यह देश भारत क्यों जिन्दा बचा है? क्योंकि उसके पास सुदीर्घ, ठोस परम्परा है। परम्परा न हो तो स्थायी अस्तित्व रह नहीं सकता। अधिकांश सम्प्रदायों और दर्शनों की कोई परम्परा नहीं होती, केवल एक बलवान् नेता होता है। इसलिए उस नेता की मृत्यु के बाद वे नष्ट हो जाते हैं, ऐसा हमेशा होता है। महापुरुषों के सपने उनके अनुयायियों द्वारा पूरी तरह धूमिल कर दिये जाते हैं।

यह युग व्यक्तिवाद का और सन्तुलित साझेदारी का है। इसलिए सब शासक चले गये। तानाशाह सत्ताएँ खत्म हो रही हैं और जहाँ पर ये अभी भी हैं, वहाँ लोग उन्हें नहीं चाहते। आध्यात्मिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलन समाज के चिन्तकों की दृष्टि में हमारे इस युग में एकदम उपयुक्त

हैं। सभी व्यक्तियों का परस्पर सन्तुलित सहयोग होना ही चाहिए, और इस सहयोग में हो रही वृद्धि को देखकर हमें और सबको बड़ी खुशी होती है। हम लोग भी उम्मीद रखते हैं कि आगे अनेक व्यक्ति इस परंपरा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ होंगे।

विभिन्न धर्मों के बीच क्या सम्बन्ध है और किन सीमाओं तक इनकी आस्थाओं एवं आचरणों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है?

सारे महान् धर्म उपदेशों एवं आदर्शों के प्रसार के रास्ते हैं, लक्ष्यों को प्राप्त करने के रास्ते हैं। विभिन्न धर्मों के संस्थापक महान् योगी एवं दिव्यात्मा थे जो अलौकिक दृष्टि रखते थे। उन्होंने प्रकाश का दर्शन किया था। इन महापुरुषों ने अपने धर्मानुकूल आचरण की शिक्षा देने के लिए कुछ अनुयायिओं को बुलाया और उन्हें कुछ निश्चित अभ्यासों की शिक्षा दी। इस प्रकार शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हुए इन शिष्यों ने उक्त अभ्यासों का प्रचार-प्रसार किया और इस प्रकार धर्मों का विकास सम्भव हो सका। बाद में प्रत्येक धर्म ने धार्मिक संस्थाओं की स्थापना कर ली, जिनकी रुचि वास्तविक आचरणों के स्थान पर मात्र संस्थागत विषयों में थी।

महान् संत-महात्माओं, ऋषि-मुनियों और महापुरुषों की उपलब्धियाँ तथा सिद्धियाँ समान थीं, साथ ही आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी समान ही थीं। तथापि संस्थागत हितों के आधार पर निर्मित धर्मों में अभी भी निश्चित भिन्नताएँ व्याप्त हैं। वस्तुतः यह भिन्नता इन धर्मों में आस्था रखने वाले लोगों की सामाजिक स्थिति के आधार पर हैं। जहाँ तक उक्त धर्मों के संस्थापकों की अनुभूतियों या विचारों की बात है, मैं इनमें कोई भिन्नता नहीं पाता हूँ।

यदि किसी व्यक्ति की आस्था ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम अथवा अन्य किसी धर्मावलम्बी संस्था में न हो, और ऐसा व्यक्ति ध्यान एवं योगाभ्यास की आवश्यकता महसूस करता हो तो क्या उसे एक शिष्य एवं योगाभ्यासी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है?

योग का किसी भी धर्म से सम्बन्ध नहीं है। तंत्र, जिससे योग विकसित हुआ, उन वेदों से अधिक पुरानी पद्धति है जिनके द्वारा हिन्दू धर्म की उत्पत्ति एवं विकास हो सका है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि योग हिन्दू धर्म से अधिक प्राचीन है।

वास्तव में योग-विज्ञान को भारत में सुरक्षित रखा गया, जहाँ केवल हिन्दू धर्म में आस्था रखने वाले लोग रहते हैं। यह उसी प्रकार हुआ जैसे तकनीकी विज्ञान की खोज ऐसे महान् वैज्ञानिकों द्वारा की गई जो जन्म से ईसाई थे। फिर भी उनके द्वारा आविष्कृत विज्ञान को ईसाई विज्ञान की संज्ञा नहीं दी जा सकती। जिस प्रकार रसायन शास्त्र, वनस्पति शास्त्र या अन्य किसी विज्ञान का अध्ययन करने में मुझे इस आधार पर कोई आपत्ति नहीं होती कि इनका आविष्कार तथा विकास ऐसे वैज्ञानिकों द्वारा किया गया जो ईसाई थे, उसी प्रकार योग, जिसे हिन्दू विचारकों द्वारा विकसित एवं परिष्कृत किया गया, उसे हिन्दू विज्ञान की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसलिए जिस तरह मुसलमान, हिन्दू, यहूदी या बौद्ध धर्मावलम्बी किसी भी विज्ञान का अध्ययन करते हैं, ठीक उसी तरह लोग चाहे किसी भी धर्म से सम्बन्ध रखते हों, वे योग को अपनाने के लिए स्वतंत्र हैं तथा अवश्य ही योगाभ्यासी बन सकते हैं।

स्वामीजी, हमें हिन्दुत्व के सम्बन्ध में कुछ बताइये?

पहली चीज यह है कि हिन्दुत्व कोई धर्म नहीं है। हिन्दुत्व तो श्रद्धा और श्रद्धा के अनेक रूपों का एक महासंघ है। हिन्दुस्तान में आज बहुत-से धर्म प्रचलित हैं। उनमें से बहुत-से धर्म हिन्दू महासंघ से सीधे सम्बन्धित हैं। कुछ सदियों के बाद कुछ और धर्म भी इससे सम्बद्ध होंगे। क्यों होंगे? क्योंकि हिन्दुत्व विश्वास करता है स्वीकृति में, अस्वीकृति में नहीं। उसका विश्वास है समावेश, न कि परित्याग।

यह बात तो स्पष्ट है कि हिन्दुत्व कोई एक धर्म नहीं है। हिन्दुस्तान के सभी धर्मों के एक विराट् परिवार का नाम है हिन्दू धर्म। इसलिए शैव, शाक्त, वैष्णव, तांत्रिक, जैन, बौद्ध, सिक्ख तथा और भी बहुत-से धर्म के लोग अपने मतभेदों के बावजूद एक परिवार की तरह रहते हैं। उन सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, उनकी अपनी-अपनी पद्धतियाँ हैं, उनके अपने लक्ष्य हैं, मगर वे सभी परस्पर निभते-निभाते हैं, एक-दूसरे को आदर और प्रेम देते हैं। एक-दूसरे को स्वीकार करते हैं, अस्वीकार नहीं।

आज दुनिया में केवल दो ही धर्म ऐसे हैं जो हिन्दू धर्म के अंग नहीं बने हैं – ईसाई और इस्लाम। लेकिन उन्हें भी इससे प्रभावित होना पड़ेगा, क्योंकि वे भी इससे अलग नहीं हैं, सब एक हैं। हिन्दू, ईसाई और इस्लाम धर्मों का अन्तिम लक्ष्य भिन्न-भिन्न नहीं हो सकता। वह लक्ष्य एक है और समान है।

दांति – मानसिक निग्रह की प्रक्रिया

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

दांति एक आंतरिक अनुशासन है जिसकी अवधारणा को समझने के लिए आपको यह जानना होगा कि मानसिक संयम क्यों आवश्यक है और इसके पीछे क्या विचारधारा है।

दांति का मूल सिद्धांत यह है कि आपको अपने मन में किसी भी चीज को इस हद तक बढ़ने नहीं देना चाहिए कि आप उसे संभाल न सकें। आपको किसी भी नकारात्मक विचार को इतना हावी नहीं होने देना चाहिए कि वह आंतरिक मनोविकृति या बाहरी विस्फोट का कारण बने। इसके लिए दांति यानि मानसिक संयम की प्रक्रिया को लागू करने की आवश्यकता है।

अति पर नियंत्रण

आपको संयम की आवश्यकता क्यों है? इसलिए कि मानव व्यवहार हमेशा अति कर देता है। आपकी प्रतिक्रियाएँ, आपके विचार भी आवश्यकता से अधिक होते हैं, और हमारी परम्परा में कहा भी गया है – *अति सर्वत्र वर्जयेत्*। हर जगह अति की स्थिति होती है और हर कोई खुद को अभिव्यक्त करने का अधिकार चाहता है। यह ठीक है, आप स्वयं को अभिव्यक्त कर सकते हैं, लेकिन आपको यह भी याद रखना चाहिए कि जीवन में संयम की जिम्मेदारी भी जरूरी है।

अभिव्यक्ति के अधिकार और संयम की जिम्मेदारी के बीच संतुलन होने पर जीवन में सामंजस्य आता है। अगर संयम न हो, सिर्फ अभिव्यक्ति हो तो संघर्ष होता है; अगर अभिव्यक्ति न हो, सिर्फ संयम हो, तो व्यक्ति अंतर्मुखी, कमजोर, अलग-थलग और एकाकी माना जाता है। इसलिए सबसे अच्छा संयोजन विवेकयुक्त अभिव्यक्ति का अधिकार और वैराग्य जनित संयम का दायित्व है। ये दोनों एक साथ चलते हैं और अति को हावी नहीं होने देते।

आंतरिक भोग

संयम का विपरीत भोग है। भोग केवल बाह्य नहीं, आंतरिक भी होता है। यह केवल इन्द्रियों से ही नहीं, बल्कि मन और भावनाओं से भी होता है।

आप अपनी नकारात्मक भावनाओं में आसानी से लिप्त हो जाते हैं, इसलिए स्वयं को संयमित करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, यदि आपका किसी से झगड़ा होता है, जो हर दिन की एक सामान्य घटना है, तो आप मन में उस व्यक्ति के सभी नकारात्मक गुणों की लम्बी सूची बनाते जायेंगे। आप सोचते रहेंगे, 'वह व्यक्ति ऐसा है, वह व्यक्ति वैसा है।' नकारात्मक सोच इसी तरीके से आपके अंदर जड़ जमा लेती है। आप अपने मन में उन नकारात्मक गुणों के बारे में इस हद तक सोचते जाते हैं कि अपनी सूझ-बूझ, समझ और संतुलन ही खो देते हैं। आप नकारात्मकता को इतना अधिक उजागर करते हैं कि आप सही-गलत का विवेक ही खो देते हैं, और आपको दूसरे व्यक्ति में कोई भी अच्छा गुण दिखाई नहीं देता। यह घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, जलन, निराशा और अवसाद जैसी भावनाओं को ही बढ़ाता है। इसका परिणाम यह होता है कि आप खुद नकारात्मक मनोवस्था में आ जाते हैं।

जब आप दूसरों के नकारात्मक गुणों के बारे में सोचते हैं, तो आपकी मानसिकता भी नकारात्मक होते जाती है। जब भी कोई व्यक्ति झगड़ा करता है तो उसके साथ ऐसा ही होता है, चाहे वह संन्यासी हो या गृहस्थ। चाहे आप अपने घर में झगड़ा करें या दफ्तर में या बीच सड़क पर, आपको यही सब झेलना पड़ता है। यही संघर्ष की प्रकृति और स्वभाव है।

सबसे पहले आप संघर्ष के बारे में सोचते हैं, फिर दूसरे व्यक्ति में खामियाँ ढूँढ़ते हैं, अपने ही चिड़चिड़ेपन, गुस्से और हताशा में डूबते जाते हैं और फिर जब आप खुद पर काबू नहीं रख पाते तो दूसरों के सामने उस व्यक्ति की चुगली करना शुरू कर देते हैं, 'अरे! फलाना व्यक्ति ऐसा है, मेरे दफ्तर का कर्मचारी ऐसा है, मेरा दोस्त ऐसा है, मेरी पत्नी ऐसी है, मेरा पति ऐसा है।' आप हर ऐसे व्यक्ति पर नकारात्मकता फैलाते जाते हैं जो आपकी बात सुनने को तैयार हो। आप अलग-अलग लोगों से शिकायत करते हैं और यह आपको नकारात्मकता के भंवर की गहराइयों तक ले जाता है। फिर, अगले चरण में आप उस व्यक्ति के साथ बुरा व्यवहार करना शुरू कर देते हैं, 'तुम कौन हो? तुम यहाँ क्या कर रहे हो? मेरी नजरों से दूर हो जाओ। यहाँ मत आओ। मैं तुम्हें पसंद नहीं करता – दफा हो जाओ!' इस तरह, एक छोटी-सी घटना राई से पहाड़ बन जाती है जिसे आप पार नहीं कर पाते। यही वह अति है जिसे दांति द्वारा नियंत्रित करना है। किसी भी चीज को मन में इस हद तक जमा न होने दें कि आप उसे संभाल न सकें।

दुनिया को रेत के एक कण में देखो

हमारे यहाँ इस तरह की कहावतें आम हैं कि 'तिल का ताड़ मत बनाओ' या 'राई का पहाड़ मत बनाओ', लेकिन फिर भी लोग इन्हें अमल में नहीं लाते। हर किसी का स्वभाव होता है कि वह छोटी-सी बात को पहाड़ बना दे, और यह दर्शाता है कि लोगों के मन में संयम नहीं है। संयम के बिना मन कैसे व्यवहार करता है? एक छोटी-सी चीज बड़ती जाती है और अंत में मन को अभिभूत कर देती है। ऐसा नहीं होना चाहिए, और यही तथ्य दांति का आधार है। मन का प्रथम अवलोकन और विश्लेषण, मन की पहली सफाई दांति में होती है।

एक उदाहरण देता हूँ दो लोगों का, जो आपस में बहुत ज्यादा बहस करते हैं। वे एक-दूसरे से सहमत नहीं हैं और बात यहाँ तक पहुँच जाती है कि असहमति एक आदत बन जाती है। जब ऐसी स्थिति आ जाती है तो लोग अपनी समझ, सूझ-बूझ और सकारात्मकता, सब खो देते हैं। वे अपने आक्रामक और नकारात्मक स्वभाव से जुड़ने लगते हैं और दूसरे व्यक्ति की नकारात्मकता पर ध्यान केंद्रित करना शुरू कर देते हैं। उनका पूरा ध्यान चर्चा के विषय से हटकर दूसरे व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तित्व पर चला जाता

है जिसे अपने निर्णयों का विरोध करते हुए देखा जाता है। चर्चा का असली मुद्दा तो पृष्ठभूमि में चला जाता है। वह मुद्दा एक छोटी-सी बात हो सकती है, रोटी कैसे बेलें – 'तुम रोटी ठीक से नहीं बेल रहे हो, तुमने तो भारत का नक्शा बना दिया है!' यह छोटी-सी घटना भी आपको चुभ सकती है और आपको नकारात्मक प्रतिक्रिया करने पर मजबूर कर सकती है – 'तुम कौन होते हो मेरी रोटियों की आकृति पर टिप्पणी करने वाले?' उस क्षण जो नकारात्मकता आपके मन में प्रवेश कर जाती है, वह हमेशा दूसरे व्यक्ति को आपके विरोधी के रूप में पेश करेगी। यह राई के पहाड़ बनने की शुरुआत है।

समय के साथ ये भावनाएँ जमा होते-होते पहाड़ बन जाती हैं। इस प्रक्रिया से गुजरते हुए आपका सारा सकारात्मक दृष्टिकोण खत्म हो जाता है। अपने कमरे में भी आप सिर्फ उस व्यक्ति के बारे में सोचते हैं, 'उसने मुझसे ऐसा कहा, मेरे साथ वैसा किया। मेरे साथ ऐसा बुरा व्यवहार आज तक किसी ने नहीं किया!' वह नकारात्मकता हर पल आपके द्वारा ही प्रबल होती जा रही है। जब आपका मन पूरी तरह से नकारात्मक हो जाता है तब वह नकारात्मकता बाहर निकलने लगती है, आप उसे अभिव्यक्त करने लगते हैं। आप अन्य लोगों को पकड़ लेते हैं और उनसे अपने 'विरोधी' के बारे में नकारात्मक बातें करना शुरू कर देते हैं। यह मौखिक दस्त सौ लोगों को प्रभावित करना शुरू कर देती है जिनके साथ आप बातचीत करते हैं। आप उस एक व्यक्ति के बारे में सौ लोगों के भीतर वही नकारात्मकता फैलाते हैं।

फिर जब नकारात्मकता उबल रही होती है और आप समर्थन तथा सहानुभूति पाने के लिए सबके सामने अपने नकारात्मक मनोभाव उगल रहे होते हैं तब आप दूसरे व्यक्ति के रास्ते में बाधाएँ खड़ी करना भी शुरू कर देते हैं, चाहे घर में या दफ्तर में या समाज में। ये बाधाएँ दूसरे व्यक्ति को परेशान करने के लिए रखी जाती हैं। यह मन का सामान्य व्यवहार है, और यहीं पर दांति की आवश्यकता है, ताकि आप समस्या को पहाड़ के रूप में देखने से पहले राई के रूप में देख सकें।

अंग्रेजी के विख्यात कवि, विलियम ब्लेक की एक कविता की पंक्ति है – दुनिया को रेत के एक कण में देखना। जिसे आप बड़ा समझते हैं, उसे आप छोटा भी समझ सकते हैं। सामान्य मानवीय प्रवृत्ति छोटी चीज को बड़ा बनाने की होती है, जबकि आध्यात्मिक प्रवृत्ति इसके ठीक विपरीत है, यह बड़ी चीज को छोटा बनाने की होती है। तब आप दुनिया को रेत के एक कण

में देख पाते हैं। यही दांति की अवस्था है जिसे धीरे-धीरे विकसित करना है, छोटी-छोटी बातों के पहाड़ बनने से पहले स्थिति को नियंत्रित करना है। इसी समझ और दृष्टिकोण को विकसित करने की जरूरत है।

आपको एक और महत्त्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिए – दांति की शुरुआत आपकी इंद्रियों और मन की स्वस्थ, समुचित सीमा को पहचानने से होती है। जिस क्षण आप उस सीमा को पार करते हैं, दांति को तुरंत क्रियान्वित होना है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि कोई भी अपने मन की अस्वस्थ स्थिति को नहीं पहचानता। हर कोई सोचता है, 'दूसरा व्यक्ति अस्वस्थ है, मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ।' यहाँ तक कि मानसिक अस्पताल में भर्ती मरीज भी सोचता है कि वह स्वस्थ है और बाकी सभी मानसिक रोगी हैं!

दूसरों को मत देखो, खुद को देखो। विश्लेषण करो कि विभिन्न परिस्थितियों के सामने आपके मन और भावनाओं की स्वस्थ सीमा क्या है। इससे आपको पता चलेगा कि आप कहाँ विफल होते हैं और कहाँ सफल। इसके बारे में सोचिये और देखिये कि आप कब सीमा पार करते हैं और अस्वस्थ हो जाते हैं। फिर जिन सकारात्मक कदमों की हमने चर्चा की है, उन्हें उठाइये और शायद दांति की अवधारणा आपके जीवन में प्रकट होने लगे।

– 7 जुलाई 2016, गंगा दर्शन, मुंगेर

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान SB Collect Online Donation Facility के माध्यम से इस **QR code** को स्कैन करके दिया जा सकता है।

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

गीता दर्शन

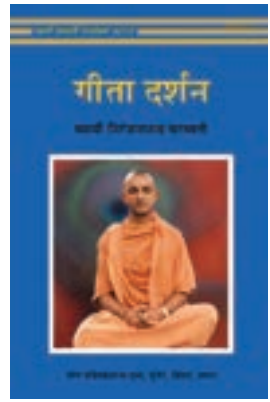

उपलब्ध

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 245, ISBN: 978-93-81620-09-0

श्रीमद्भगवद्गीता के पहले, बारहवें और पन्द्रहवें अध्याय पर स्वामी निरंजनानन्द की प्रस्तुत टीका जटिल दार्शनिक विवेचन नहीं, वरन् भवसागर की उत्तुंग लहरों में जूझते मानव की सहायता के निमित्त बढ़ा हाथ है। योग की पृष्ठभूमि में सरल भाषा, व्यावहारिक दृष्टि और मनोवैज्ञानिक युक्तियों की प्रस्तुति ने गीता के गूढ़ ज्ञान को सर्वसुलभ बना दिया है। नित्य अध्ययन के लिए उपयुक्त यह ग्रन्थ पग-पग पर साधक के विचारों, भावनाओं और कर्मों को उचित दिशा में प्रेरित कर शाश्वत सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए) एवं कार्यक्रम

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं
- स्वस्थ जीवन हेतु *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर *यौगिक जीवनशैली साधना* का कार्यक्रम उपलब्ध है

• Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
फरवरी 8–14	*पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)*
मार्च 3–9	*प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)*
मार्च 22–28	*प्रत्याहार एवं धारणा प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

कार्यक्रम

जनवरी 28– फरवरी 2	*बसंत पंचमी महोत्सव तथा बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस*
जून 25–जुलाई 9	*वेद पारायण*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*